श्याम का स्वभाव

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

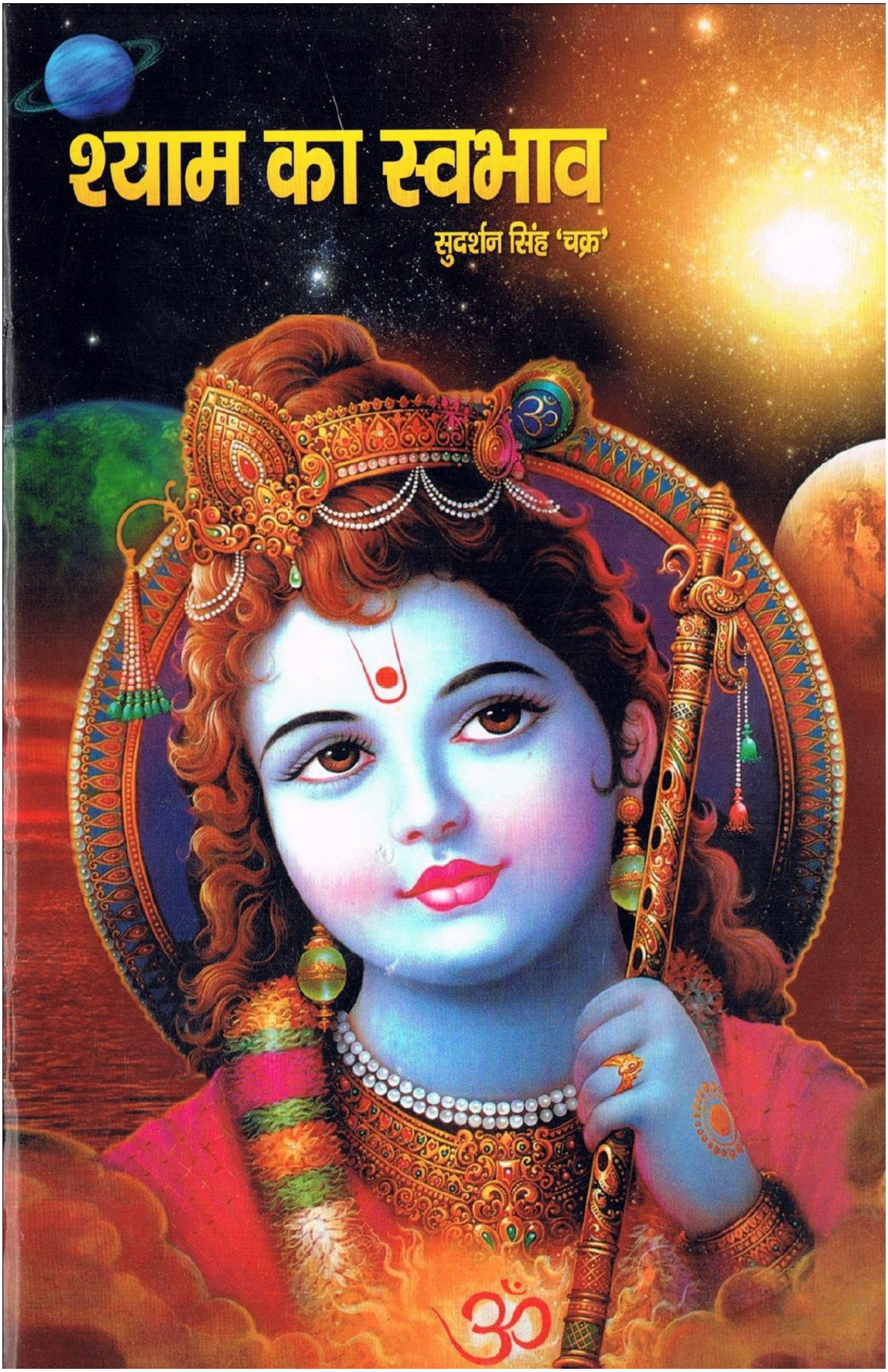

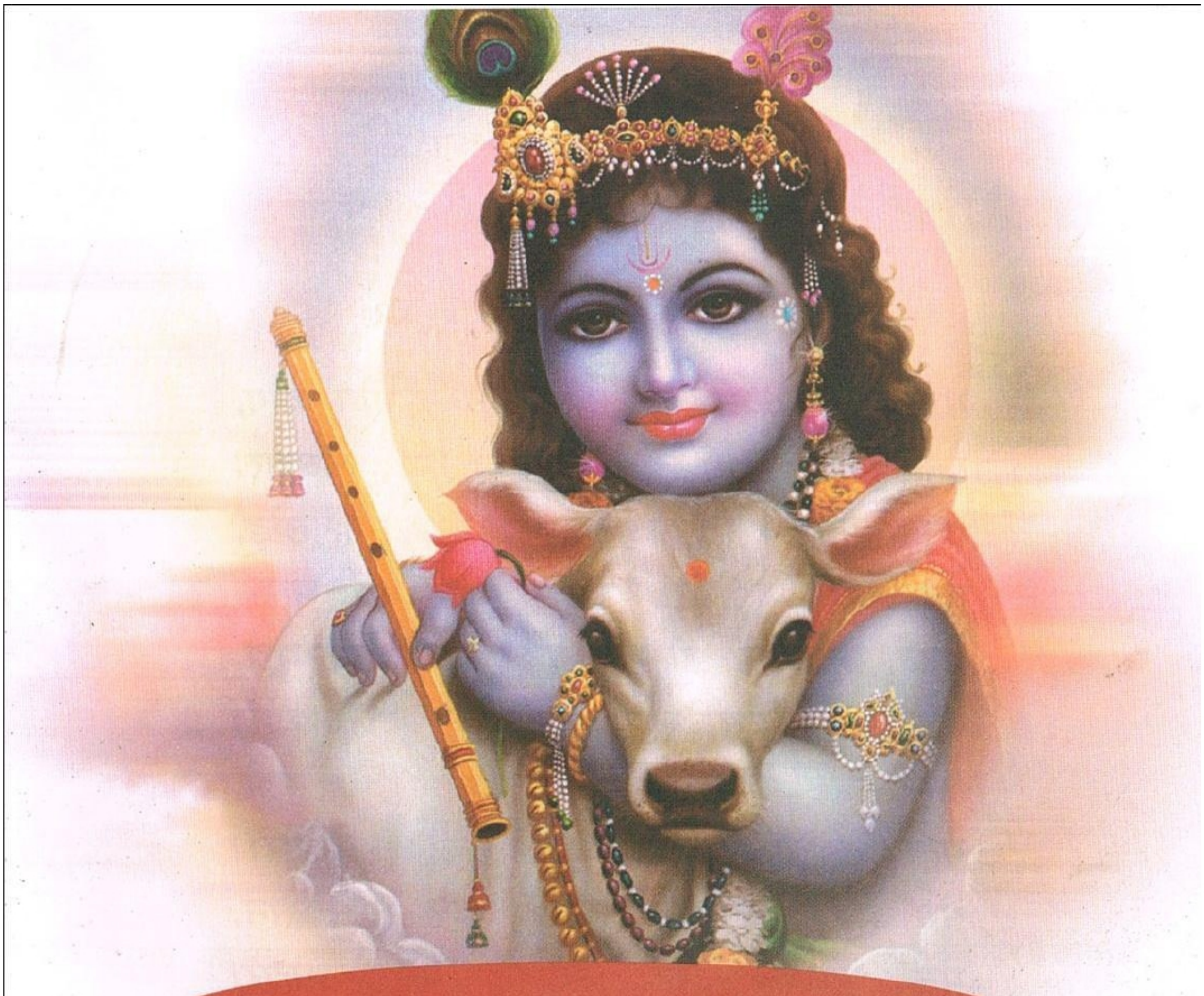

श्याम का स्वभाव

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

इस पुस्तक को या इसके किसी अंश को प्रकाशित करने, उद्धृत करने अथवा किसी भी भाषा में अनूदित करने का अधिकार सबको है।

याचना

मांगूँगा न भुक्ति–मुक्ति, मांगूँगा न भोग–योग,
देना मुझे कसकभरी पीड़ा का व्यवहार।
करना मत किसी की कृपा का पात्र तुम्हें छोड़,
देना मत किसी की प्रशंसा का व्यर्थ भार।।
करना मत किसी के मृदु जीवन का कण्टक मुझे,
करना मत किसी की भोली आशा का आधार।
करना मत किसी के भी उत्पीड़न–योग्य मुझे,
मारा न जाय किसी दुर्बल का अधिकार।।
मेरा स्वत्व, मेरा सुख देखूँ न छीना किसने,
मेरा सर्वस्व रहे सबही का उपहार।
मुझको सताकर हँस पाये कोई क्षण एक,
ऐसे क्षणों से बने जीवन सब, सरकार।।
कोई न जाने मुझे, कोई न माने मुझे,
कोई न पूछे मेरे मनसका समाचार।
जगती के पाप परिणाम मैं भोगूँ, और,
पावें सब सुख–शान्ति मेरे पुण्य–अधिकार।।
दे यदि सकें तो दे दे और यह इतना प्रभु,
छूटे तन सुरसरि–तट कहते जय जगदाधार।
कोई न रोये–धोये कोई न कष्ट पाये,
पेट उससे भर लेवें प्राणी भी दो चार।।

श्रीचक्र

श्याम का स्वभाव

आपका कुछ परिचय है मैया यशोदा के लाडले से?
श्री व्रजराजकुमार से परिचय करने की इच्छा है आपकी?

देखिये, यह नन्दबाबा का लड़का अभी बहुत नन्हा है। बहुत सुन्दर, बहुत सुकुमार है तो क्या हुआ–बहुत भोला है। ठीक–ठीक कछनी तो इसे अपनी कटि में लपेटनी नहीं आती। मैया पहना दे तो ठीक, वह पास न हो; क्योंकि अनेक बार यह खेल में उसे खोल फेंकता है और तब फिर दाऊ भैया के सामने जा खड़ा होता है– 'दादा! तू पहना दे।'

लेकिन इतने भोले इस कन्हाई को पता नहीं, क्या–क्या आता है। पता नहीं, कहाँ–कहाँ की बातें मौज आती है तो करने लगता है। जो जीमें आती है, बोलता है और जो जीमें आती है, कर लेता है। कोई नहीं कह सकता कि धुन चढ़ जाय तो कन्हाई अमुक काम कर नहीं सकता।

बहुत भोला, बहुत नन्हा है श्यामसुन्दर। इसलिए सबसे अच्छा लगता है इसे अनुकरण करना और यह अनुकरण इतना अच्छा, इतना सच्चा कर लेता है कि पूछिये मत। हम आप तो क्या, सृष्टिकर्ता तक सिर पकड़ के बैठ जायँ इसका अनुकरण देखकर।

आप इस गोपाल से परिचय करना चाहते हैं?

मत पूछिये कि 'यह कहाँ मिलेगा?'

'बिना मिले परिचय?'

'जी–कहा नहीं कि इसका भोलापन असीम है। आप एक चित्र, एक लकड़ी–पत्थर की मूर्ति ले लीजिए। सुन्दर, असुन्दर–ऊट–पटाँग कैसी भी और कहिये' – कृष्ण! यह तू है।'

कन्हाई निश्चय कहेगा – 'हाँ, यह मैं हूँ।'

अब किसके मुख में हाथ भर की जीभ है कि वह कहेगा कि 'यह मूर्ति या चित्र श्रीकृष्ण नहीं है।'

'यह मैं तेरी पूजा कर रहा हूँ।' आप दूब, तुलसी, जल, फूल – क्या चढ़ा रहे हैं, इसे कौन देखता है। गोप का नन्हा बालक कहाँ समझता है कि पूजा क्या होती है और कैसे होती है। पूजा के मन्त्र, पूजा के पदार्थ – यह सब विद्वानों के लिए रहने दीजिए। आप कर लीजिये पूजा। जैसी आपको आती है–जो कुछ आपके पास है उससे।

'अच्छा, तुम मेरी पूजा करते हो?बहुत अच्छे हो तुम।' श्याम को पूजा स्वीकार है तो 'पूजा सम्यक् परिपूर्ण नहीं है' यह कहने का कोई साहस करेगा?

'यह देवता नहीं है – पत्थर है।' लोगों ने कहा।

'हाँ पत्थर है।' गोपाल को तो अनुकरण ही आता है।

'हमारा धर्म है मूर्ति को तोड़ना। हम इसे तोड़ेंगे।' लोगों ने यह भी कहा।

'तोड़ दो! तुम्हारा धर्म है तोड़ना – तोड़ो! कृष्ण–चन्द्र को तो मूर्ति–भज्जन में भी पूजन–जैसा ही आनन्द आया। उसे खिलौनों से क्षेलने में आनन्द आता है तो सखा जब कोई खिलौना धड़ाम से पटककर फोड़ देते हैं तो उसमें भी आनन्द आता है। वह तो उछल–कूदकर तब ताली बजाता है।

'ईश्वर नहीं है।' आपने कहा।

'हाँ–नहीं है ईश्वर। क्या आवश्यकता है। ईश्वर की।' लीजिये, इस नटखट ने छुट्टी कर दी। अब आप जानो और आपका काम जाने। आपके लिए ईश्वर नहीं है। आपको अब ईश्वर से कोई सहायता, स्नेह, सुविधा पाने की आशा नहीं करनी चाहिए। ईश्वर आपके निर्माण–पतनोत्थान में टाँग अड़ाने अब नहीं आवेगा।

आप उसके विधान में टाँग अड़ावेंगे?

इस धोखे में मत रहिये। उसका विधान छुईमुई नहीं है। जबतक उसके विधान की सीमा में आप उछल–कूद करते हैं, ठीक है; किन्तु आपने उस सीमा के अतिक्रमण–की चेष्टा भी की तो..... भाई मेरे! चींटी समुद्र तैरने जायेगी तो क्या होगा?

आप हिमालय पर सिर पटकेंगे तो हिमालय टूटेगा या आपका सिर?

अत: ईश्वर के विधान की चिन्ता मत कीजिए।

अपनी चिन्ता कीजिए। अपनी चिन्ता करनेवालों में ही हैं जो कहते हैं – 'ईश्वर है, किन्तु निराकार हैं।'

श्रीकृष्णचन्द्र को तो जैसे प्रतिध्वनि करनी आती है – 'हाँ, ईश्वर निराकार है।'

'ईश्वर निराकार तो है; किन्तु सगुण है। अनन्त दयालु, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ है।'

'हाँ–अनन्त दयालु, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ है।'

अब लीजिये–ईश्वर आपसे तटस्थ नहीं रह गया।

वह अनन्त दयालु, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ होकर आपसे तटस्थ कैसे रह सकता है?अब आप उसकी दया पर, उसकी सामर्थ्यपूर्ण सहायता पर निर्भर रह सकते हैं। आप पुकारिये। आप प्रार्थना कीजिये–वह सुनेगा।

'नहीं सुनता।'

यह आपने क्या कहा? ऐसा कैसे हो सकता है कि आप पुकारे और आपका सर्वज्ञ, अनन्त दयालु, सर्वसमर्थ ईश्वर न सुने।

रूकिये! आपने ठीक पुकारा?

'ठीक पुकारना क्या?'

अरे भाई! आप इसे ईश्वर–परमेश्वर कुछ भी कह लो, है तो यह नन्द बाबा का लाला ही। बाबा ने इसे कुछ पढ़ाया–लिखाया नहीं। गोप–बालक वैसे भी गुरुगृह नहीं जाते और श्याम तो अभी नन्हा है। इसे कहाँ संस्कृत या पद–भजन समझ में आते हैं। लच्छेदार भाषा यह समझता कहाँ है। यह समझे, ऐसी भाषा में आपने इसे पुकारा?

'कौन–सी भाषा यह समझता है?'

केवल हृदय की भाषा! हृदय की भाषा तो यह गायों तक की समझ लेता है, आप तो मनुष्य हैं। इसकी भाषा में इसे पुकारिये, सुनेगा कैसे नहीं।

'ईश्वर–ब्रह्मतत्त्व निर्गुण, निराकार, निर्विशेष है।

अपने से अभिन्न रूप में उसकी अनुभूति होती है। ऐसे प्रकाण्ड दार्शनिकों का भला श्रीकृष्ण से क्या प्रयोजन? निर्विशेष को तो हाँ ना कुछ करना नहीं। प्रयोज्य–प्रयोजक–प्रयोजन, हम–तुम–वह का भेद ही वहाँ नहीं है।

ब्रह्मरूप ऐसे महापुरूषों की चर्चा मैं नहीं करता। कन्हाई भी उन्हें बाबा मा मैया के सिखलाने पर दोनों नन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम ही करता है।

चर्चा आपकी–आप व्रजराजकुमार से परिचय करना चाहते हैं न?

अच्छा, एक महत्वपूर्ण बात– 'ईश्वर निष्ठुर है, क्रूर है, पक्षपाती है।' ऐसी बात भूलकर भी मत सोचिये।

'क्यों?

इसलिए कि इस नटखट को अनुकरण ही तो करना आता है। कहीं इसने भी कह दिया–'हाँ, ईश्वर निष्ठुर है, क्रूर है, पक्षपाती है।'

क्या बिगाड़ लेंगे आप इसका?

आपका तो सब बिगड़ा ही धरा है ऐसी दशा में।

'तब?'

इस क्रम से चलिये–

'कनूँ! तू ईश्वर है?'

'हाँ, मैं ईश्वर हूँ।' कृष्ण दूसरा कुछ कह नहीं सकता।

'तू कोटि–कोटि ब्रह्माण्डों का परमेश्वर, सबकी सृष्टि–उत्पत्ति का परम नियन्ता है।'

'हाँ–हूँ।'

'तू सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, अनन्त करूणार्णव, सर्वेश्वरेश्वर है।'

'सो तो हूँ ही।'

'और मैं तेरा हूँ। दृढ़ता से – पूर्णता से कहिये।

'हाँ–तू मेरा है।' उतनी दृढ़ता से, उतने झटके से स्वीकृति में सिर हिलाकर श्याम कहेगा–कहेगा ही। बस, और क्या चाहिए आपको।

लोगों ने कहा– 'तुम मेरे स्वामी हो!'

'हाँ–मैं तुम्हारा स्वामी हूँ।'

'तुम मेरे सेवक हो!'

'हाँ – मैं तुम्हारा सेवक हूँ।'

'तुम मेरे पिता!'

'हाँ–मैं तुम्हारा पिता।'

'तुम मेरे पुत्र!'

'अच्छा, आप मेरे बाप।'

'तुम मेरे भाई!'

'हाँ दादा! मैं तुम्हारा भाई।'

नन्दलाल को कहीं अस्वीकार करना आता है। आप का सिर स्वीकृति में झुकता है तो उसका दुगुना झुकता है। स्मरण रखिये कि आप ही उसे अस्वीकार करना सिखला सकते हैं। कहीं आपका हृदय कहने लगा– 'श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं!'

निश्चय वह अपना सिर हिला देगा– 'मैं ईश्वर नहीं।'

'कोई ईश्वर नहीं?'

'हाँ, कोई ईश्वर नहीं।'

'ईश्वर है – पर मुझसे रूष्ट है।'

'तुमसे रूष्ट है?'

'मुझपर कृपा नहीं करता।'

'हाँ, नहीं करता।'

इसलिए इस भोले बच्चे को अस्वीकृति मत सिख लाइये। महाराज दशरथ, माता कौसल्या ने इसे पुत्र बनाया। पुत्र तो बनाया ब्रज के गोपों–गोपियों ने। पता नहीं, कितनों ने इसे स्वामी बनाया और कितनों ने सेवक। कितनों ने सखा बनाया और इस सुकुमार की पीठ पर चड्ढी कसी। इसको स्वयं अस्वीकार करना नहीं आता। आप अस्वीकृति में सिर हिलाओगे तो इसका सिर अस्वीकृति में हिलेगा।

प्रह्लाद ने कहा– 'पत्थर के खम्भे में भगवान हैं।' पत्थर के खम्भे से यह नृसिंह बनकर निकल पड़ा।

हिरण्यकशिपु ने कहा– 'यह मायावी हरि मुझे मारने को प्रकट हुआ।'

नृसिंह ने उसका पेट फाड़ दिया। वे त्रिलोक–भयंकर भगवान नृसिंह जिनके समीप जाने का साहस ब्रह्माजी में तो क्या होता, लक्ष्मी को भी नहीं हुआ। प्रह्लाद निर्भय चले गये और बोले– 'मेरे स्वामी!'

नृसिंह ने उठाकर गोद में बैठा लिया और जीभ से चाटने लगे– 'मेरे बच्चे।'

'यह मैया यशोदा का नटखट रूप बदलना बहुत जानता है; किन्तु स्वभाव का क्या करे। कोई अपना स्वभाव बदल पाया है या सही बदल लेगा?यह सिंह बने या सूअर, मछली बने या कछुआ; वामन बने या विराट्, ब्राह्मण बने या क्षत्रिय – स्वभाव इसका यही कि आप इसे जो कहो, आपके लिए यह वही है। आपमें दम खम है तो आप कह सकते हैं–

'कन्हाई! तू मेरा है।'

'हाँ– मैं तेरा हूँ।' मोहनका वचन पक्का है।

'तुझे मैं जैसा कहूँगा – वैसा तू करेगा।'

'अच्छा, मैं वैसे ही करूँगा।'

'मैं कहूँ बैठ तो बैठ और कहूँ उठ तो उठ।'

'जो आज्ञा!' कोई आपत्ति नहीं, कोई अप्रसन्नता नहीं, कोई खेद नहीं। श्यामसुन्दर तो सदा प्रस्तुत है।

आप कहते हैं– 'भगवद्दर्शन नहीं होता।'

आपने कभी दृढ़ता से कहा– 'श्याम! तू मेरा है। चल सामने आ!'

लेकिन भैया! क्या अच्छा लगेगा इस परम सुन्दर, परम सुकुमार भोले नन्हे व्रजेन्द्रनन्दन को इस प्रकार दौड़ाना? इस प्रकार अपनी इच्छा के अनुसार विवश करना?क्या सुख मिलेगा आपको इसे श्रान्त करके – इसे व्यस्त करके?

यह आनन्दकन्द है जो हँसता–खेलता, कूदता–फुदकता अपनी क्रीड़ा में लगा ही अच्छा लगता है। इसे देखने, इसे स्मरण करने में – इसे अपना बनाकर स्मरण करने में, इसको उत्फुल्ल करने में जो असीम अचिन्त्य सुख है – किसी इच्छा को पूर्ति किस तुलना में है उसके?कहीं अमृत–महासिन्धु की तुलना सड़े गड्ढे के जल की बूँद से की जा सकती है?

इसे अपना बनाना – यह क्या कठिन है। जब गोप, गायें, वन के कोल–किरात इसे अपना बना लेते हैं तो आप क्यों नहीं बना सकते?इसे कहाँ बड़ा पाण्डित्य, भारी तपस्या या योग चाहिए?यह स्वयं कहाँ योगी, तपस्वी या विद्वान है। नन्हा–सा गोपशिशु और वह भी भोला इतना कि अस्वीकार करना इसे आता नहीं। आप दृढ़ता–से कहो तो–

'कनूँ! मैं तेरा और तू आज से मेरा!'

कन्हाई अस्वीकार कर नहीं सकता और यह बात कोई मैं अपनी ओर से गढ़कर–बनाकर नहीं कह रहा हूँ। इसकी साक्षी तो वेद–पुराण–शास्त्र सब हैं। सब सन्त–महापुरुष इस बात को जानते–मानते हैं। स्वयं श्यामसुन्दर ने कुरूक्षेत्र की रणभूमि में अर्जुन के रथ पर बैठकर इस अपने स्वभाव की घोषणा की है। आप गीता उठाकर देख लीजिये, इसी नन्दलाल ने कहा है–

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'

(2)

मेरी जन्मभूमि ग्राम में है। उस ग्राम में और उसके आसपास के ग्रामों में अहीरों के बहुत घर हैं। अबकी बात नहीं कहता – अब तो नयी सभ्यता की वायु सबको लग गयी है। अब कहाँ जातीय पंचायतों में वह निष्ठा है?बात अपने बचपन की कह रहा हूँ। तब तक गाँव के लोग सीधे थे, सच्चे थे, ईमानदार थे और उनमें परस्पर स्नेह, सहानुभूति भरपूर थी। तब जाति–भाई का अर्थ बहुत महत्वपूर्ण था और अहीरों में तो सजातीय होना सगे भाई होने जैसा था। यह सब इसलिए था कि नवीन शिक्षा, नयी सभ्यता तब तक गाँव में पहुँची नहीं थी। गाँव के लोग सभ्य नहीं बने थे।

अहीर वीर जाति है और साथ ही उपद्रवी जाति भी। अहीर जिसके अपने हैं, उसके अपने हैं और जिसके शत्रु हैं, भगवान ही उनका कुशल–क्षेम रखें। पिताजी को आसपास के अहीर अपना मानते थे। क्यों मानते थे– पता नहीं, क्योंकि तब मैं बहुत छोटा था। समान्यतः राजपूतों और अहीरों में उस ओर स्पर्धा ही चलती है, किन्तु पिताजी इसके अपवाद थे। फलतः अहीरों के स्वभाव के सम्बन्ध में मेरा बाल्यकाल का ज्ञान अल्प नहीं है।

किसी अहीर से किसी का झगड़ा हुआ और उस अहीर को कसकर पाठ पढ़ा देने की सूझ गयी। बस, उसे सूझ जानी चाहिए। अहीर तब पढ़े–लिखे नहीं थे और कहा जाता है कि बुद्धि भी कुछ मोटी ही होती थी उनकी। भैंस चराना, दण्ड–बैठक करना, अखाड़े में ताल देना, लाठी चलाना–इनमें जो निपुण वह अहीरों में श्रेष्ठ। जिसके घर जितनी भैंसें, अहीरों में वह

उतना धनी। अत: अहीर से उलझना कोई नहीं चाहता था। कहीं खटपट हो ही गयी किसी से और उस अहीर को सूझ गयी – बस, सूझना चाहिए।

गाँव से बाहर खेत में अहीर अपनी एक झोपड़ी तो रक्खेगा ही। उसकी भैंसें, बैल वहीं बँधेंगे और घर का सब से पुष्ट तरूण रात्रि को वहीं सोयेगा। घर के दो–तीन व्यक्ति भी वहाँ सो सकते हैं। बँधा समय और बँधा नियम–जिसे किसी पर क्रोध उतारने की सूझ गयी है, वह लगभग अर्धरात्रि को लाठी लेकर अकेला उठेगा। अपने गाँव में या समीप के गाँव में जहाँ भी दूसरे अहीर की झोपड़ी है, वहाँ पहुँचेगा। वहाँ सोनेवाले का पैर या चादर खींचकर उसे जगा देगा और बिना एक शब्द बोले चल देगा। जागनेवाला कुछ पूछेगा नहीं। वह लाठी उठायेगा और जगानेवाले के पीछे हो लेगा।

'मैं इधर जाता हूँ। अमुक–अमुक गाँव तुम्हारे हिस्से!' सौ–दो–सौ पद जाकर जगानेवाला पीछे देखकर पीछे आनेवाले को कह देगा और आगे बढ़ जायेगा। पीछे आनेवाला बताये ग्रामों की ओर बढ़ जायेगा। इतना और उसे जगानेवाला कहता जायेगा – 'दो या तीन घड़ी में अमुक स्थान पर सब आ जायेंगे।'

अब आगे क्रम यह है कि जो किसी को जगायेगा, उसे यही संदेश देगा और अपने हिस्से के गाँवों में–से कुछ उसके हिस्से कर देगा। दो–तीन घड़ी में निश्चित स्थान पर लाठी लिये अहीरों का एक समुदाय एकत्र हो जायेगा। कितने व्यक्ति एकत्र होंगे, यह तो जिसने एकत्र करना प्रारम्भ किया था, उसकी इच्छापर है। वह दस पर्याप्त मानता हो तो दस और पाँच सौ मानता हो तो पाँच सौ। उसने कितने गाँव, कितने झोपड़ों के लोगों को एकत्र करना चाहा, इस पर संख्या निर्भर है।

वे एकत्र लोग कुछ पूछेंगे नहीं। एकत्र करनेवाला क्या करायेगा, यह उसकी इच्छा। खेत उखड़वा दे, घर–खलिहान फुँकवा दे, लाठी बजने लगे रात को प्रतिपक्षी के सिर पर ..... कुछ भी जो एकत्र करनेवाला चाहे। 'ऐसा क्यों?' कोई नहीं पूछेगा। एक अहीर ऐसा चाहता है – अहीरों के लिए इतना पर्याप्त था।

मैं नहीं कहता कि यह कोई भली बात थी या है। अब तो अहीरों में ऐसा संगठन रहा नहीं है। अब तो उनमें अच्छे सुशिक्षित लोग हैं। अब उन्हें 'ऐसा क्यों? किसलिए?' पूछना आ गया है। वे बड़ी त्वरासे सभ्य होते जा रहे हैं। मैं तो उस समय का एक यथार्थ वर्णन कर रहा था और यह वर्णन इसलिए कि नन्दबाबा भी गोप–अहीर ही हैं और उनका लड़का पढ़ा–लिखा नहीं है। इसे आधुनिक सभ्यता की वायु ने स्पर्श नहीं किया है। इससे परिचय करना है तो इस अहीर के लड़के का स्वभाव समझ लेना आपके हित में होगा।

'यस्तवां द्वेष्टि स मां द्वेष्टि।'

इन नन्दकुमार ने महाभारत युद्ध से पहले स्पष्ट कह दिया अर्जुन से– 'अर्जुन! जो तुमसे द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है। तुम्हारा मित्र, वह मेरा मित्र और तुम्हारा शत्रु, वह मेरा शत्रु!'

यह गोपकुमार कन्हाई 'क्यों? किसलिए?' कहना जानता नहीं है। इसे दो टूक निर्णय

करना आता है– 'जो अपने हैं, वे अपने हैं। जो अपनों के विरोधी हैं, वे अपने भी विरोधी हैं।'

'अपने कभी अपराध नहीं करते।' अद्‍भुत मान्यता है अहीरकी। सामान्य अहीर इस मान्यता से चूक सकता है, किन्तु ब्रजराज का कुमार कभी चूकता नहीं। इसे अपनों के दोष दीखते ही नहीं। इस नटखट को छोड़िये, मर्यादा–पुरूषोत्तम की चर्चा करते गोस्वामी तुलसीदासजी को कहना पड़ा–

जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली।
फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली।।
सोइ करतूति बिभीषन केरी।
सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी।।

श्रीराम के हृदय में स्वप्न में भी नहीं आया कि सुग्रीव–विभीषण से कोई भूल भी हुई है। अपनों के दोष देखने का स्वभाव ही नहीं है।

साहिब होत सरोष, सेवक के अपराध सुनि।
अपने देखे दोष, राम न सपनेहुँ उर धरे।।
'समदरसी मोहि कह सब लोगू।'

सब लोग कहते हैं कि 'ईश्वर समदर्शी, न्यायनिष्ठ है।' लेकिन यह बात क्या परम सत्य है। ऐसा नहीं है–

तदपि करहिं सम बिषम बिहारा।
भगत अभगत हृदय अनुसारा।।

जो भक्त नहीं हैं, जो इस गोपकुमार के अपने नहीं हो गये हैं, उनके सम्बन्ध में यह परम समदर्शी है। लेकिन जो इसके अपने हो गये हैं, उनका सम्बन्ध जहाँ आया, वहाँ सारी समदर्शिता एक ओर पटक देता है यह। भक्त–पक्षपाती भगवान है–शास्त्र को भी यह स्वीकार करना ही पड़ा है। जहाँ भक्त की बात आयी, इस भगवान–को न न्याय दीखता, न अन्याय। इसे तो केवल भक्त दीखता है।

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजन प्रिय:।।
(श्रीमद्‍भा. 9.4.63)

'दुर्वासाजी! मैं परतन्त्र–गुलाम की भाँति अपने भक्तों के पराधीन हूँ। साधुभक्तों ने मेरे हृदय पर अधिकार कर लिया है। अत: मुझे तो यही सूझता है कि भक्तों का प्रिय कैसे हो। मैं उनका ही प्रिय हूँ।' सबका प्रिय होने की कोई सनक इन महामहिम को है नहीं–यह आप स्मरण रखिये।

यह भी स्मरण रखिये कि भक्तापराध–भक्तविरोध की लेशमात्र गन्ध श्रीकृष्ण को आप से बाहर कर देती है। 'कोई मेरे अपने का विरोध करता है।'

उसने क्यों विरोध किया, दोष दोनों में किसका–यह सब कुछ नहीं। दोष भले सब भक्त का

ही हो, किन्तु वह भक्त है न। उसका विरोध करने का साहस किसी ने कैसे किया? अब लीजिये, ये अहीर–नन्दन अपने स्वभाव पर उतर आये हैं और इनका प्रतिकार करने की शक्ति है किसी में?

बालि के समस्त उलाहनों के विरूद्ध श्रीराम ने जब फटकार दिया–

मम भुजबल आश्रित तेहि जानी।
मारा चहसि अधम अभिमानी।।

'तू इतना अधम! इतना अभिमान तेरा कि मेरा आश्रित है सुग्रीव, यह जानकर भी उसे मारना चाहता था!' बेचारे बालि के समीप इसका कोई उत्तर नहीं था।

अच्छा, सौभरि ऋषि का क्या दोष था? वे वृन्दावन के यमुना के समीप ह्रदमें तप करते थे जल में डूबे रहकर। स्वाभाविक है कि प्राणी जहाँ रहता है–अपने आसपास के प्राणियों से उसे सहानुभूति हो जाती है। ऋषि–मुनि तो क्या, साधारण सत्पुरूष भी चाहते हैं कि उनके आसपास कोई किसी को कष्ट न दे। कोई आखेट न करे।

गरूड़ आये और उन्होंने सौभरि के तपोह्रदसे सबसे बड़ी मछली पकड़ ली। ऋषि सौंभरिने मना किया। माना कि गरुड़ भूखे बहुत थे, किन्तु दो–चार क्षण भी वे क्षुधा सह नहीं सकते थे? उनका वेग तो वायु से भी तीव्र है। संसार में और कहीं मछली–कछुए थे ही नहीं? लेकिन गरूड़ ठहरे सर्वेश्वर श्रीनारायण के वाहन। वे क्यों किसी की सुनने लगे? उन्होंने वहीं उस मत्स्य को उदरस्थ किया।

'यदि गरूड़ यहाँ कभी फिर आकर कोई मछली पकड़ेगा तो तत्काल प्राणहीन हो जायेगा।' ऋषि सौभरिने शाप दे दिया।

कोई दोष है इसमें ऋषि का? कहीं क्रोध है इसमें। गरूड़ का कुछ बिगाड़ा उन्होंने? यह शाप तो केवल इस अपने तपोवन को सुरक्षित करने के लिए ही है न या और कुछ?

लेकिन इस अहीर के लड़के का कोई क्या करे। 'गरूड़ मेरे और इस तपस्वी का इतना साहस कि जानबूझ कर गरूड़ को, मेरे आश्रित को शाप देगा।'

लो, गोपकुमार अपने स्वभाव पर उतर आया। 'तुम तप के बल से गरूड़ को शाप दोगे? तप के बल से मछलियों की रक्षा करोगे? इस ह्रद में गरूड़ को भोजन नहीं मिलेगा और मछलियाँ पालोगे तुम? मैं तुम्हारे तप और तुम्हारी मछलियों को देखता हूँ।'

गरूड़ ने शाप का कुछ बुरा नहीं माना था। गरूड़ ने कुछ नहीं कहा अपने आराध्य से किन्तु गरूड़ कहें–इसकी आवश्यकता? उनका आराध्य जो अपनों को अपनी दृष्टि से कभी ओझल नहीं करता। अब जब कभी कुछ करने को उतर आया–किसी का तप–किसी की

शक्ति उसे रोक लेगी?

जिन मछलियों की रक्षा की सौभरिने, उन्हीं की क्रीड़ा ने उनको तपोभ्रष्ट किया। जल में डूबे रहकर तप करते थे सो जाकर राजा मान्धाता की पचास कन्याओं से विवाह किया उन्होंने और बाबाजी बच्चे पालने में लग गये।

सौभरि–ह्रद में आया कालियनाग। जल में मछलियाँ या अन्य जल–जीव तो क्या बचते, ह्रद के ऊपर से उड़ने वाले पक्षी तक कालिय के विष की गन्ध से मूर्छित होकर गिरते और मर जाते। जिस ह्रदको सौभरि जलजीवों के लिए निरापद करने चले थे, वह नभचरों तक के लिए परमापद बना दिया गया। यह सब हुआ सौभरि के साथ और गरूड़ ने भी कुछ किया था – यह देखनेवाला कोई नहीं।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

सनकादि कुमार भगवान नारायण के दर्शन करने बैकुण्ठ गये। बैकुण्ठ में भी रोक–टोक हो तो वह अभयधाम कैसा? लेकिन जय–विजय ने बेत फटकार दिया। कुमारों को क्रोध आया, उन्होंने शाप दे दिया– 'तुम नारायण के द्वारपाल होकर भी रोक–टोक करते हो। उद्दण्ड व्यवहार करते हो! जाओ असुर हो जाओ!'

भगवान नारायण स्वयं द्वार तक आये। उन्होंने कुमारों से क्षमा माँगी। उनके शाप का अनुमोदन कर दिया। सीधी दृष्टि से बहुत मर्यादापूर्ण घटना दीखती है। लेकिन तनिक विश्लेषण करके देखिये।

'जय–विजय का क्या बिगड़ता?' उनका कुछ बिगड़ा नहीं, क्योंकि एक बार जो श्रीहरि का हो गया, उसका त्रिकाल में कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। उसका कभी कुछ बिगड़नेवाला है नहीं। जय–विजय तीन जन्म असुर हुए तो त्रिलोकी के मूर्धन्य रहे। वे सुरों के भी सेव्य बने रहे और तीनों जन्मों में अपने आराध्य के हाथों मरे।

जय–विजय जब हिरण्यकशिपु–हिरण्याक्ष हुए, जब रावण–कुम्भकर्ण हुए, जब शिशुपाल–दन्तवक्र हुए – कौनसा पुण्य किया उन्होंने? देवता, ब्राह्माणों के शत्रु रहे थे। पर–पीड़न, धर्मद्रोह, अन्याय–अत्याचार करने में कुछ उठा रक्खा उन्होंने, दूसरा कोई जीव उनके कर्मों का शतांश अपकर्म भी करे–महारौरव में भी उसे स्थान मिलेगा? लेकिन किसी अन्याय–अधर्म ने कुछ बिगाड़ा उनका?

यह अहीरपुत्र–यह इतना ही जानता है कि एक बार जो कह दे– 'मैं तुम्हारा' वह इसका हो गया अैर तब–

'अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतंमम।'

मर्यादा–पुरूषोत्तम बनकर आनेपर भी कितने दृढ़ स्वर में घोषणा करते हैं ''जो एक बार भी शरण में आकर कह देता है– 'मैं आपका' उसे मैं सम्पूर्ण प्राणियों से निर्भय कर देता हूँ। यह

तो मेरा व्रत है।''

उसने क्या किया, कैसा है वह, आगे क्या करेगा, कैसे रहेगा, ऐसी कोई शर्त या खोजबीन नहीं। उसने कहा– 'मैं तुम्हारा।'

आप कहते हैं– 'इस क्षण से तुम त्रिलोकी में निर्भय।' यह है आपका व्रत। अब कोई उसको भय देने चले तो आश्रय ढूँढे। उसके लिए महाभय–उसकी रक्षा भला अब कौन कर लेगा?

हाँ–सनकादि कुमार भी परम भक्त थे, यही कुशल थी। पता नहीं, कोई अभक्त होता तो उसका क्या होता, किन्तु जय–विजय द्वारा फटकारे जाने पर उन्होंने उन द्वारपालों की प्रार्थना नहीं की, उनको शाप दे दिया। क्या परिणाम हुआ?

'मेरे द्वारपालों की स्तुति नहीं कर सकते तो असुरों की स्तुति करो।' यह विधान उनके साथ भी हो गया। जय–विजय हुए हिरण्यकशिपु–हिरण्याक्ष। जय–विजय बैकुण्ठ में भगवत्पार्षद थे। उनकी स्तुति–वह भी दो–चार क्षण की, किन्तु हिरण्यकशिपु की राज्यसभा में उस दैत्येश्वर की स्तुति तो नित्य–नित्य और सहस्रों वर्षों तक करनी पड़ी। सनकादि के कारण उनके सब भाइयों को–ब्रह्माजी के सब पुत्रों को, प्रजापतियों और नारदजी को भी दैत्यराज की स्तुति करनी पड़ी।

यह स्वभाव है गोप का और श्याम गोपकुमार है। आप उसके हैं तो आपकी चित और पट दोनों। आप सर्वत्र निर्भय और आप उसके नहीं है तो आपकी बुराई तो बुराई है ही, अच्छाई भी अच्छाई बनने में सफल तभी तक है–जबतक आप उसके किसी से उलझने से बचे रहें। अन्यथा बड़े–बड़े उसके अपनों के आगे सिर उठाते ही पटकनी खा जाते हैं।

बुद्धिमानी तो इसमें है कि आप इस गोपकिशोर के हो रहें।

(3)

मैया यशोदा का लाल बड़ा संकोची है। लेकिन नटखट इतना है कि अपना संकोच भी अपने नटखटपन के आवरण–में ढक लेता है। नटखटपन श्री रघुनाथ में नहीं है, इसलिए उनका नाम ही एक मित्र ने 'संकोचीनाथ' रख दिया। स्वभाव तो बदलता नहीं रूप बदल लेने से। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा–

सकुचत सकृत प्रनाम किये ते।

कोई एक बार मस्तक झुका देता है आपको तो आप संकोच से गड़ जाते हैं कि 'मैं तो इसका कोई बड़ हित नहीं कर सका।' बड़ा हित–अब जो जितना बड़ा, उसकी दृष्टि भी उतनी बड़ी। उसकी दृष्टि में हित भी वैसा। कंगाल किसी को पाँच पैसे दे दे तो अपनी दृष्टि में बड़ा दान.... पाँच पैसे का दान किया उसने और करोड़पति पाँच सहस्त्र रुपये भी दे दे तो सोचेगा– 'केवल पाँच सहस्त्र ही तो।' अब जो अनन्त ऐश्वर्य–सिन्धु हैं, उनकी दृष्टि में 'बड़ा हित–बड़ा कहाँ से आये कुछ उनकी दृष्टि में।

जो सम्पति दससी अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्ही।
सो सम्पदा विभाषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्ही।।

(विनयपत्रिका)

अपने दस मस्तक काटकर हवन कर दिये रावण ने और तब उसे जो सम्पत्ति, जो ऐश्वर्य वरदान के रूप में प्राप्त हुआ, वही ऐश्वर्य विभीषण को बड़े ही संकोच से श्री राम ने दिया। बड़ा संकोच– 'यह नन्हीं सम्पत्ति मैं क्या दे रहा हूँ।'

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

सुदामा मुत्र थे श्रीकृष्णचन्द्र के। गुरुगृह के सहपाठी थे। पत्नी ने बड़े आग्रह से भेजा था उन्हें द्वारका। सुदामा की दशा अत्यन्त दयनीय थी–

धोती फटी–सी, लटी दुपटी,
नहि पायँ उपानह कौ कछु सामा।

कटि में मैली, चिथड़े–सी धोती और कंधे पर उससे भी मैला–फटा उत्तरीय। अत्यन्त दुर्बल शरीर। एक–एक हड्डी और नस दीख रही। नंगे पैर वे वह भी बिवाइयों से चिथड़े हो रहे।

समाचार मिला–

पूँछत दीन दयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा।

'सुदामा!' श्री द्वारकाधीश अन्तःपुर में महारानी रूक्मिणी के सदन में पर्यङ्कपर विराजमान थे और वे निखिल ऐश्वर्यमयी व्यजन कर रही थी। 'सुदामा आये हैं।' इतना सुना और दौड़े – कहीं पटुका गिर और कहीं छूटा मुकुट। दौड़कर हृदय से लगा दिया। भीतर भवन में लाकर उसी पर्यङ्कपर बैठाया और स्वयं नीचे चरण धोने बैठे सुदामा के। जिनके चरणों में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और देवेन्द्र दूर से मस्तक रखते हैं, वे स्वयं ब्राह्मण के चरण हाथ में लेकर धोने बैठे। सुदामा के चरणों पर दृष्टि गयी और कमललोचन विह्वल हो गये–

'ऐसो बेहाल बेवाइन सौ मग कंटक जाल गड़े पुनि जोये।
हाय महादुख पाये सखा! तुम आये इतै न, किते दिन खोये।।
देखि सुदामा की दीन दसा करूना करि कै करूनानिधि रोये।
पानि परातकौ हाथ छुयौ नहिं नैननि के जल तें पग धोये।।'

वह स्वागत, वह सत्कार, वह आत्मीयता कि सेवक–सचिव ही नहीं, अपने स्वामी के स्वभाव को जाननेवाली राजमहिषियाँ तक चकित–थकित रह गयी।

सुदामा को पता नहीं और उनके लाये चिउरों के दाने चबाने के बहाने उन्हें ऐश्वर्य देने लगे तो स्वयं महालक्ष्मी रूपा महारानी रूक्मिणी घबरा गयी कि ये आज करने क्या जा रहे हैं।' एक मुट्ठी चिउरे चबाकर जब दूसरी मुट्ठी श्याम ने भरी, तब उन्होंने हाथ पकड़ लिया– 'नाथ! बहुत हो गया। इस लोक और परलोक का सम्पूर्ण ऐश्वर्य तो आप एक मुट्ठी के साथ दे चुके।'

अपने स्वामी के संकोची स्वभाव को जाननेवाली महारानी ने वैसा ही अभिनय किया। उन्होंने भी कहा– 'अकेले ही आप सब ग्रहण कर लेना चाहते हैं?आपके इन महाभाग मित्रका यह अमृतोपहार मुझे और मेरी बहिनो को भी तो मिलता चाहिए। हमें तो एक–एक दाना ही अब अपने भाग में मिलेगा। आप इससे भी हमें क्यों वंचित करते हैं।'

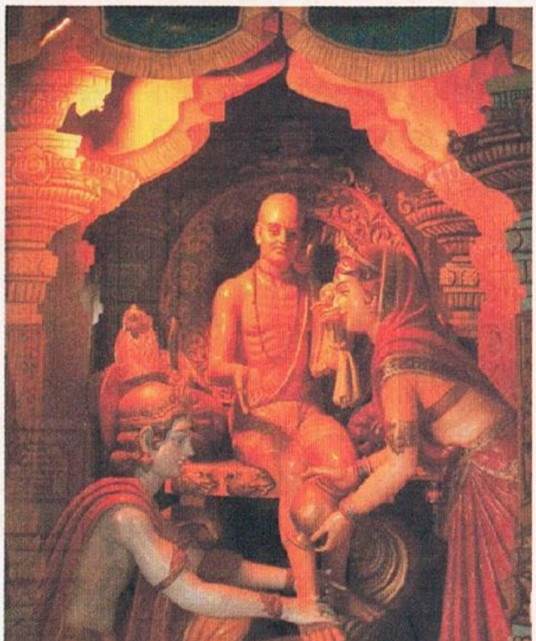

यह सब स्वागत–सत्कार, सब अद्‌भुत व्यवहार। किन्तु जब सुदामा को विदा करने का अवसर आया तब क्या हुआ?

नटखटपन छोड़ दे तो कन्हाई ही काहेका। आप सुदामा से कहते हैं– 'भैया! मार्ग लम्बा है और मार्ग में दस्युओं का भय भी है। यदि ये रत्नाभरण–........।

सुदामा को मुक्तामाला, रत्नाङगद आपने अपने हाथ से पहिनाये थे। अब यह कहते तो संकोच लगता है कि 'यह प्रसाद देते जाइये। इन्हें धारण करके मैं अपने को परिपूत अनुभव करूँगा।

'मार्ग लम्बा है। मार्ग में दस्युओं का भय है।'

कोई पूछे इनसे कि द्वारका में रथ, अश्व, हाथियों का अभाव हो गया है?मार्ग लम्बा है तो आप ब्राह्मण को पैदल भेज क्यों रहे हैं?

मार्ग में दस्युओं का भय है तो आपका चक्र किस दिन काम आयेगा?चक्र निष्प्रभ हो गया है या उसने आप का आदेश–पालन बन्द कर दिया है? आपका नाम लेकर मनुष्य तीनों लोकों में निर्भय हो जाता है। भय के भी पद भयकम्पित होते हैं आपके चरणाश्रित के सम्मुख और आप अपने सखा को मार्ग में दस्युओं का भय बताते हैं?

किन्तु किसी को यह प्रकट करने में संकोच लगता है कि– 'मैंने मित्र को कुछ दिया। मैंने मित्र की कुछ सेवा की।' इसका क्या उपाय? सुदामा को लगना नहीं चाहिए, कम से कम सम्मुख नहीं लगना चाहिए कि श्रीकृष्ण ने उनको कुछ दिया, उनकी कुछ सेवा की। श्याम

को लगता है कि मित्र के नेत्र में कृतज्ञता के भाव आयेंगे तो उसे वह सह नहीं सकेगा। इसलिए यह सब नटखटपन–अपने संकोच को छिपाने के लिए यह सब लीला–चापल्य है।

सुदामा ने सोने–जवाहरात के गहने उतार दिये चुपचाप। उनको न इनका मोह था न लोभ। अकिंचन, बीतराग ब्राह्मण के लिए ये अनुपयोगी थे। सखाने स्नेह से पहिनाये थे, इसलिए पहिने हुए थे। श्याम के स्नेह का तिरस्कार कैसे करते; किन्तु उतारने में लगा– 'मोहन ने बड़ी कृपा की। इस क्षीणकायापर इतना भार मैं कैसे ढोता।'

'अच्छा! आप यह अमूल्य उत्तरीय एवं धोती तो लेते ही जायँ।' हँसकर श्रीकृष्ण ने कहा। इस चपल को सुदामा की पहिनी धोती और उत्तरीय का भी लोभ है। इन्हें तो यह मस्तक पर लपेटेगा और प्राण के समान सँभाल कर रखेगा। मित्र के धारणा किए वस्त्र..... किन्तु इसके कहने के ढंग को तो देखिये।

'अरे नहीं! मैं दरिद्र ब्राह्मण कहाँ इनको पहिनकर अच्छा लगता हूँ।' सुदामा ने अपनी मैली फटी धोती लपेटते हुए द्वारका के वस्त्र उतारते–उतारते कहा– 'चलना पैदल' माँगना भीख और ये कपड़े! कोई दो मुट्ठी अन्न देनेवाला भी होगा तो इन वस्त्रों को देखकर मुख बिचका लेगा।'

अब सुदामाजी को कहाँ पता है कि उनके इन नटखट मित्र ने उन्हें ऐसा बना दिया है कि धनाध्यक्ष कुबेर भी उनके द्वार भिक्षा माँगे। द्वारका से तो सुदामा को श्रीकृष्ण ने उसी रूप में विदा किया, जिस रूप में वे द्वारका आये थे। मार्ग के लिये दो मुट्ठी चने भी सुदामा को नहीं दिये गये।

घर पहुँचे सुदामा। अपने ग्राम से दूर ही थे कि चौंके– 'यह नगर! ये कनक–शिखर सौध! कहाँ आ गया मैं? न ग्राम है और न झोंपड़ी।' वहाँ तो दूसरी द्वारका–सुदामापुरी बस चुकी थी। वह सुदामापुरी, जिसके वैभव–के सम्मुख अमरावती भी कंगाल की झोपड़ी लगे।

नन्वब्रुवाणो दिशते समक्षं, याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः।
पर्जन्वत् तत्स्वयमीक्षमाणो, दाशार्हकाणामृषभः सखा मे।।

(श्रीमद्भागवत)

सुदामानगर में आये और कपने महासदन में पहुँचे। सब कुछ देखा–समझा और गदगदकण्ठ बोले– 'यह सात्वतशिरोमणि, यदुवंशविभूषण मेरा मित्र मेघों के समान स्वयं ही आवश्यकता–पीड़ितों को देख लेता है और उसे देने लगता है तो देते थकता नहीं, किन्तु निश्चय अद्भुत स्वभाव है इसका। मैंने मुँह खोलकर कुछ माँगा नहीं तो इसने सामने कुछ दिया भी नहीं। इसे लगा होगा– मित्र को सामने कुछ देकर अपने से हीन, उपकृत बनाने की तुच्छता नहीं करनी चाहिए। इससे मित्र को संकोच होगा। मित्र को तो यही लगना चाहिए कि मैंने दो मुट्ठी चिउरे ही सही–कृष्ण को कुछ दिया ही है। भले श्याम द्वारकाधीश हो, अनन्त ऐश्वर्य का स्वामी हो, मैंने उससे कुछ लिया नहीं है।'

मित्र को संकोच होता या नहीं होता, कन्हाई को स्वयं जो महासंकोच हो रहा था। यह परम मित्रवत्सल! मित्रको उपकृत करने का विचार ही इसे संकुचित करता है। मित्र गौरवान्तिव

रहें! उसके मस्तक ऊँचा रहे। मोहन को सदा यही अभीष्ट रहा है।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

प्रति उपकार करउँ का तोरा।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।

मर्यादापुरूषोत्तम श्रीहनुमानजी से कहते हैं– 'हनुमान! तुम्हारे उपकार का बदला तो मैं क्या चुका सकता हूँ, मेरा मन भी संकोच के मारे तुम्हारे सामने नहीं होता। मन भी तुम्हारे सामने लज्जित –संकुचित रहता है।'

यह बात केवल हनुमानजी के सम्बन्ध में नहीं है। सुरासुरजयी रावण पर विजय प्राप्त करके अयोध्या पहुँचे तो वानर–भालूओं का परिचय देते गुरुदेव से कहते हैं–

ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे।।

मर्यादापरूषोत्तम झूठ नहीं बोलेंगे और वह भी अपने कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ से। अपने हृदय में वे जैसा अनुभव करते हैं, वैसा कह रहे हैं– 'गुरुदेव! ये सब मेरे सखा हैं। लंकाका युद्ध तो समुद्र के समान अपार था। मैं तो उसमें डूब ही गया होता; किन्तु ये सब मेरे लिए जहाज बन गये। इन्होंने मुझे उस समर–सागर में डूब जाने से बचा लिया। विजयी तो इन्होंने बनाया मुझे।'

इन संकोचीनाथ की यह अनुभूति – यह स्वभाव है इनका। इन्होंने कुछ हित किया, कुछ कृपा की–जैसे कभी इनको लगता ही नहीं है। ये तो कृपा करके भी संकुचित ही होते हैं।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

बड़ा सुकुमार, बड़ा मनोहर, बड़ा सौम्य शील है– इन मेघसुन्दरका ब्रज में, मथुरा में, द्वारका में और अयोध्या में भी; किन्तु लोकभयंकर नृसिंहरूप में आप इनको क्या कहेंगे? वहाँ भी ये सौम्यशील हैं?

भले दिशाएँ नृसिंह की हुंकृति से काँपती हो। भले ब्रह्मादि देवताओं के प्राण सूखते हों इन उग्रतेजा की कराल भ्रुकुटि देखकर और भले गम्भीर गुर्राहट करके समीप आती लक्ष्मीजी को ये भगा दें; किन्तु अपने स्वभाव का क्या करें? स्वभाव तो वही संकोचीनाथ का है।

प्रह्लाद ने आकर चरणों में मस्तक झुकाया। नृसिंह ने उठाकर गोद में बैठा लिया। दुलारा, जीभ से चाटने लगे। पुचकारा और बोले– 'बेटा! बड़ा सुकुमार है तू। बहुत अत्याचार सहने पड़े तुझे। बड़ा निष्ठुर निकला मैं। बड़ी देर हुई मुझे प्रकट होने में। मुझे तू क्षमा कर दे!'

क्षन्तव्यमङग यदि मे समये विलम्ब:।

जिसकी स्तुति भी समीप आकर करने का साहस सुरों–में नहीं हुआ, जिनके पदों में

प्रणिपात करने लक्ष्मीजी नहीं आ सकी, वह गद्‌गद कण्ठ, साश्रुनेत्र बालक प्रह्लाद से कह रहा था– 'पुत्र! मुझे क्षमा कर दे।'

बड़ा स्नेह, बड़ा वात्सल्य! मुख से निकल गया– 'वत्स! माँग तो सही, क्या लेगा तू?'

प्रह्लाद ने कहा– 'स्वामी! आप मुझे प्रलोभन देते हैं?मैं कामनाओं से पहिले संत्रस्त हूँ। मेरे मन में कभी कोई कामना न उठे, यही वरदान दें आप।'

भगवान नृसिंह उल्लसित हो उठे– 'पुत्र! तूने अपने इस अकिंचन स्वामी की लज्जा रख ली। नृसिंह तुझे क्या दे सकता था। त्रिभुवन का सिंहासन, त्रिलोक का ऐश्वर्य तो तेरे पिता का ही है। वह तो तेरा स्वत्व है। मैं तुझे और क्या दे सकता हूँ।'

'अपने श्रीचरणों की भक्ति दीजिये! प्रह्लाद को कहाँ इस ऐश्वर्य का लोभ था उनको कहाँ अमरावती के सिंहासन पर बैठना था; किन्तु यह तो उनके स्वामी का स्वभाव है कि अपने जनको सब कुछ देकर भी अनुभव करते हैं– 'इसे कुछ तो नहीं दिया।'

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

आप से धीरे से – एकान्त सलाह की भाँति एक बात कहूँ?

श्री नन्दबाबा का लाल बहुत संकोची है। इस सुकुमार–से कुछ माँगकर इसे और अधिक संकोच में मत डालिये। आप कुछ माँगेंगे, कुछ प्रार्थना करेंगे तो बड़ा संकोच, बड़ा दु:ख होगा इसे। इसे लगेगा– 'मैं इतना अयोग्य–इतना प्रमत्त, इतना कृपा–कृपण हूँ कि मेरे स्वजनों को कहना पड़ता है– प्रार्थना करनी पड़ती है।'

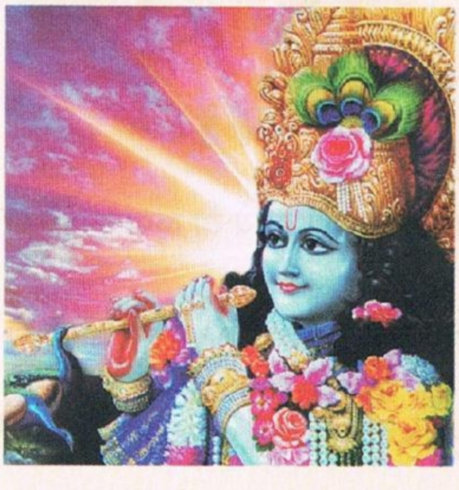

इस आनन्दकन्द से प्रमाद नहीं होता–यह आप जानते हैं। यह आपके मंगल विधान में लगा रहता है– यह भी आप समझते हैं। ऐसी अवस्था में कुछ अपनी ओर से कहकर, माँगकर इसे संकुचित करना क्या उचित है?

स्याम संकोची प्रेम का।

इसलिए इस परमसंकोची को संकोच में मत डालिये। इसे तो उन्मुक्त हृदय से प्यार–आशीर्वाद दीजिये। मोहन–को नि:संकोच करेंगे तो आप जीवन में, जगत में और सर्वत्र संकोचहीन, सम्पूर्ण संतुष्ट रहेंगे–यह सर्वथा सुनिश्चित है।

(4)

श्रुति कहती है– 'रसो वै स:।' 'वह रस–स्वरूप–आनन्दस्वरूप है।'

शस्त्र और सत्पुरूष कहते हैं– 'वह निखिल लोक–महेश्वर, आत्माराम, आप्तकाम है।'

इतना तो अपने को भी पता है – यह श्रीव्रजेन्द्र का अत्यन्त लाडला इकलौता लाल है। अत: इसे कोई क्या देगा। इसको भला चाहिए ही क्या और सम्पूर्ण सृष्टि में तथा उससे भी परे

कुछ हो तो–कहीं ऐसा क्या है, जो कन्हाई के लिए दुर्लभ–स्पृहणीय हो।

लेकिन अद्भुत स्वभाव है इस वनमाली का। स्वयं मित्रों के कण्ठ में मणिमाला पहनायेगा तो कहेगा– 'मैं अब तेरे गले में ये पत्थर लटका रहा हूँ। तू इनका भार ढो।'

कोई सखा एक नन्हा पुष्प, एक गुंजा, एक आम्रकिसलय ले आये तो उसे दौड़कर लेने आयेगा। उसे कभी अपनी घुँघराली काली अलकों में खोंस लेगा, कभी भुजा या कण्ठ में अथवा कान पर रखकर नाचेगा। घर पर हुआ तो बाबा को, मैया को और गोप–गोपियों को, वन में हुआ तो दाऊ दादा को, दूसरे सखाओं को बार–बार दिखलायेगा, फुदकेगा– 'कितना सुन्दर! कितना उत्तम उपहार है यह मेरे सखाका।'

गोपियाँ तनिक–सी छाछ, जरा–सा माखन देती हैं और कन्हाई उनके आगे–पीछे नाचता घूमता है। नन्द सदन में दूध, दही, माखन का अभाव है क्या? किन्तु यह तो मोहन का स्वभाव है – अपनों की वस्तु तो वह छीनकर, चुराकर भी ले लेता है। कोई बालक उसके श्रीअङ्गपर गेरू या खड़िया से कुछ अटपटी रेखा भी खींच देता है तो वह देर तक उन रेखाओं को देखता है, दूसरों को दिखाता है– 'कितना उत्तम चित्र है।'

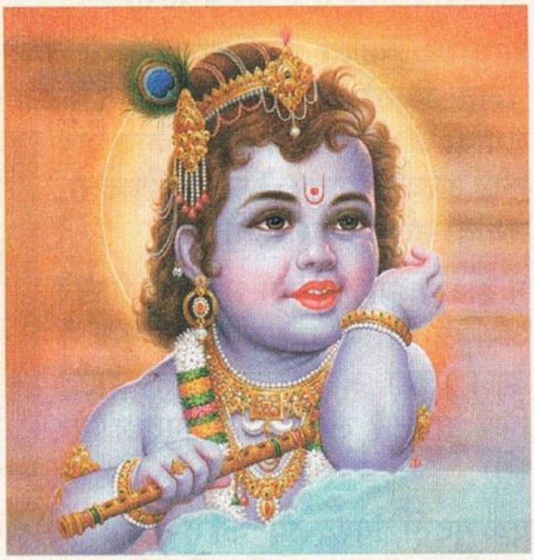

आप क्या कहते हैं?– 'कृष्ण बालक है। बच्चा है, भोला है।' बड़ा होकर ही इसका स्वभाव कहाँ परिवर्तित हो गया।

सुदामा क्या लेकर गये थे द्वारका? एक मुट्ठी चिउड़े और वह भी दूसरों के घरों में माँगे हुए। कोई लाल, कोई श्वेत, कोई मोटा, कोई पतला, कोई छोटे चावल का–कोई लम्बे चावल का। चिउड़े भी एक जैसे नहीं। जैसे सुदामा की दरिद्रता का साकार रूप हो। वे चिउड़े बँधे थे गन्दे, मैले, फटे चिथड़े में।

द्वारका का वैभव देखकर सुदामा को साहस नहीं हुआ था कि उन चिउड़ों का उपहार द्वारकाधीश को अर्पित करें। वे उसे अपनी बगल में दबाये–दुबकाये सिकुड़े जा रहे थे; किन्तु कन्हाई कहीं ऐसे मानता है। इसने पूछ लिया– 'भाभी ने मेरे लिए क्या उपहार भेजा है?'

क्या कहते सुदामा? उन्होंने मस्तक झुका लिया। उनका मस्तक झुका और श्रीकृष्ण का हाथ बढ़ा– 'यह आप बगल में क्या दुबकाये हैं?'

सुदामा ने और दबायी पोटली। जिसे श्रीकृष्ण खींचना चाहे, कोई दबा सकेगा, रोक सकेगा कोई? मोहन ने खींचा। जीर्ण वस्त्र फट गया। चिउड़े नीचे पादपीठ पर और भूमि पर बिखर गये।

'ओह! यह भेजा है भाभी ने उपहार! इतने उत्तम चिउड़े!' जैसे महीनों का अकाल का मारा क्षुधातुर अन्न–पर टूट पड़े, उस आतुरता से श्यामसुन्दर पर्यङ्क से भूमि पर उतरा और उन चिउड़ों को समेटने लगा।

पादपीठ पर, भूमि पर–जहाँ अपने ही नहीं, सेवकों तक के पैर पड़ते हैं, वहाँ गिरे–बिखरे चिउड़े त्रिभुवन का स्वामी कंगाल के समान आतुरता से समेट रहा था। समेट लेने तक का धैर्य भी पूरा नहीं था इसमें। एक मुट्ठी समेट–कर इसने मुख में डाली–

तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः।।

(श्रीमद्भा. 10.81.9)

'प्यारे मित्र! ये परम स्वादिष्ट तुम्हारे चिउड़े मुझे–मुझ विश्वरूप को तृप्त कर रहे हैं।' आप इतने मुग्ध, इतने प्रभावित हैं कि सम्पूर्ण समष्टि को उन चिउड़ों का भाग दे रहे हैं– 'मुझ विश्वरूप को ये तृप्त कर दे रहे हैं।

साधारण व्यक्ति भी स्थिर, स्वच्छ स्थान पर बैठकर भोजन करता है। खड़े–खड़े चलते–फिरते, अस्त–व्यस्त भोजन करना सामान्य शिष्टता के भी विपरीत है। शास्त्र–की मर्यादा के तो विपरीत है ही; किन्तु जब कोई अत्यन्त आतुर हो जाय–शिष्टता, मर्यादा उसे स्मारण रहती है?

न हाथ धोया, न पैर। भूमि पर बिखरे अपवित्र चिउड़ों को समेटकर मुख में डाल लिया और उन्हें चबाते–चबाते फिर समेटने लगे। दूसरी मुट्ठी भर ली।

एक मुट्ठी 'विश्वरूप' को तृप्त कर चुकी। विश्व का सम्पूर्ण वैभव सुदामा का हो चुका। अब दूसरी मुट्ठी? महारानी रूक्मिणी जी ने हाथ पकड़ लिया। मित्र का लाया यह उपहार उनके आराध्य को इतना स्वादिष्ट लगा है तो उसका एक कण प्रसाद उन्हें भी तो चाहिए। उन्हें कहाँ भरी मुट्ठी मिलती है? सोलह सहस्त्र एक सौ आठ सौ आठ में बंटने पर एक कण ही तो उनके भाग में आयेगा।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

पाण्डवों के दूत बनकर गये थे हस्तिनापुर। धृतराष्ट्र की प्रेरणा से दुर्योधन ने स्वागत की वह प्रस्तुति की थी, जो उसने कभी किसी के लिए नहीं की। दुर्योधन पराया नहीं था। अन्ततः उसकी पुत्री लक्ष्मणा का विवाह हुआ था श्री कृष्ण–पुत्र साम्ब के साथ उसे अधिकार था समधी का सत्कार करने का। किन्तु जब उसने भोजन–विश्राम की प्रार्थना की, आपने दो टूक कह दिया– 'इस आतिथ्य की प्रस्तुति के लिए धन्यवाद!'

दुर्योधन– 'धन्यवाद की बात क्यों? यह तो कर्त्तव्य है हमारा। आप पधारें!'

श्रीकृष्ण– 'सुयोधन! मनुष्य यदि क्षुधासे मर रहा हो तो कहीं भोजन कर लेता है, अन्यथा

वहाँ भोजन करता है, जहाँ प्रेम हो। प्रेम मेरे प्रति आप में नहीं है और क्षुधा से मर मैं नहीं रहा हूँ।'

श्रीकृष्ण भूखे नहीं थे, ऐसी बात नहीं है। दूर से आये थे। पता नहीं मार्ग में अल्पाहार भी किया था या नहीं। बहुत करके नहीं किया था। डटकर भूख लगी थी; किन्तु दुर्योधन का अन्न नहीं खाना था, इसलिए नहीं खाया। अन्यथा इतनी भी प्रतीक्षा नहीं कर सके कि वहीं उपस्थित विदुरजी को साथ लेकर उनके घर जाते। विदुरजी लग गये धृतराष्ट्र को समझाने में और श्रीकृष्ण का रथ विदुर के घर की ओर दौड़ चला।

'चाची! चाची! बहुत भूखा हूँ। द्वारपर रथ से कूदे और दूर से हो पुकार लगानो प्रारम्भ कर दी।

श्याम का स्वर भी कहीं छिपता है। वह मेघ–गम्भीर स्वर श्रवणों में पड़ा और विदुर–पत्नी भूल ही गयी कि वे स्नान करके उठी हैं। वस्त्र उन्होंने अभी पहने ही नहीं हैं। वे वैसे ही दौड़ी, द्वार खोला। उनकी अवस्था देखते ही श्रीकृष्ण ने अपना उत्तरीय उनके शरीर पर डाल दिया।

'चाची! बहुत भूखा हूँ। पद वन्दन करते हुए भी एक ही रट।

विदुर–पत्नी ने लाकर आसन पर बैठाया। घर में तत्काल और कुछ तो था नहीं, पके केले थे। उठा लायी और सम्मुख बैठकर खिलाने लगी। वे भाव–विह्वला, उन्हें अपने शरीर की ही सुधि नहीं तो यह कैसे पता लगता कि वे केले का गूदा फेंकती जा रही हैं और छिलके श्री–कृष्ण को देती जा रही हैं।

'बड़े मधुर! बहुत स्वादिष्ट हैं ये!' श्रीकृष्ण बड़े उल्लास से चबाये चले जा रहे हैं वे छिलके।

श्यामसुन्दर घर गये हैं, यह पता चलने पर विदुरजी को भी पहुँचने की त्वरा तो हुई ही। महाराज धृतराष्ट्र को कहकर वे लगभग पीछे–पीछे ही आये। द्वार से घर में प्रवेश करते ही जो दृश्य देखा– दो क्षण को चरण ठिठक गये। समीप आकर पत्नी को झिड़क दिया– 'तू श्रीकृष्ण को खिला क्या रही है? ला, दे केले मुझे और जाकर वस्त्र पहन।'

विदुर–पत्नी को अब शरीर का ध्यान आया। केले विदुरजी के हाथ में देकर वे संकोच से वस्त्र बदलने चली गयी। विदुरजी ने केला छीलकर गूदेवाला भाग दिया श्री–कृष्णचन्द्र के कर में।

'चाचाजी! केला मीठा तो है; किन्मु वह स्वाद नहीं जो छिलकों में था।'–श्रीकृष्ण ने केले खाते हुए कहा।

'मुझ में वह प्रेम जो नहीं है, जो इस पगली में था।' विदुर के नेत्र भर आये।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी श्री रघुनाथ की रूचिका वर्णन करते हुए कहा है–

घर गुरगृह प्रिय सदन सासुरें भई जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरी के फलनिकी रूचि माधुरी न पाई।।

अयोध्या के महाराजा धिराजका अपना राजभवन ही छोटा नहीं था उमड़ते हुए अगाध स्नेहसागर की मूर्तियाँ कौसल्या, सुमित्रा आदि माताएँ और भाई; फिर अवध–का कौन अभागा होगा जो अपने घर में अपने सम्राट् का आतिथ्य करने को उत्सुक न हो। अनेक बार भगवती अरून्धती श्रीरघुनाथ को भाइयों समेत आमन्त्रित करती थी। कभी आमन्त्रण आता था कैकयनरेश का, कभी सुमित्र–देश का और कभी दक्षिण कोसलका। मित्र भी तो थोड़े नहीं थे। जनकपुर का तो स्वत्व ठहरा अवध के कुमारों एवं अपनी कन्याओं को बार–बार बुलाकर उनका सत्कार करने का।

श्री रघुनाथ को एक ही बात, एक ही धुन–वैसे तो परम संकोच–निधान है। जो सम्मुख आया, बड़े प्रेम से आरोगेंगे। स्वाद जैसे श्रीराम को पता नहीं; किन्तु जब कोई बार–बार आग्रह करके पूछे– 'भोजन कैसा लगा ?खूब स्वादिष्ट बना या नहीं ?'

मर्यादा–पुरूषोत्तम असत्य तो बोल नहीं सकते। वे कहते हैं– भोजन बहुत स्वादिष्ट, बहुत मधुर, बहुत प्रिय लगा; किन्तु......।'

'किन्तु क्या ?'

'वन में माता शबरी ने बेर खिलाये थे। जो स्वाद, जो माधुर्य उन बेरों में मुझे मिला था, वह माधुर्य तो फिर कहीं मिला नहीं।'

आप जानते ही हैं कि वस्तु में स्वाद नहीं होता। कोई पदार्थ स्वादिष्ट हुआ नहीं करता। स्वाद होता है रूचि में। जिसकी जैसी रूचि, उसे वैसा पदार्थ स्वादिष्ट लगता है। कुछ लोगों को भोजन में मिर्च, मसाला, खटाई न हो तो भोजन सर्वथा अस्वाद लगे। कुछ को मिर्च असह्य लगती है। मेरे कई मित्र दूध में अधिक चीनी चाहते हैं। अधिक चीनी पड़े तो दूध मुझे अप्रिय हो जाता है। मैं ऐसे लोगों को जानता हूँ जो मीठा बहुत खाते हैं; किन्तु दूध में थोड़ी भी चीनी डालो तो वे दूध पी नहीं सकते। अब श्रीराम या घनश्याम की रूचि कैसी ?इन्हें पदार्थ प्रिय नहीं लगते। पदार्थ मीठा है या खट्टा, कड़वा है या कसैला– यह इनकी रसना नहीं पहचानती। पदार्थ देनेवाले के अन्तर में प्रेम कितना है, इसके अनुसार इनकी जीभ को वह पदार्थ प्रिय या अप्रिय, मधुर या कटु लगता है।

परमभक्ता करमाबाई अपने गोपाल लाल को बड़े प्रातः खिचड़ी का भोग लगाया करती थी। स्नान–पूजन पीछे, पहिले उठते ही खिचड़ी चढ़ा देती। उनका भोला नन्हा गोपाल– इसे सबेरे–सबेरे ही भूख लग जाया करती है। इसे भोग लगाकर तब निश्चिन्त मन से स्नानादि करती वे। उनका शरीर श्रीवृन्दावन में छूटा।

मुझे एक महात्मा ने बतलाया– 'करमाबाई का शरीर छूटने के कई दिन पीछे तक उनकी कुटिया से किसी बालक–के रो–रोकर पुकारने का स्वर पड़ोसियों को सुनायी पड़ता रहा। बालक रो–रोकर पुकारता था– 'मैया! मैया री! मैं भूखा हूँ। मुझे खिचड़ी दे।'

मैया गोलोक पहुँच गयी। किन्तु वृन्दावन की उस कुटिया में मैया के हाथ की खिचड़ी का स्वाद जो गोलोक के अधीश्वर की रसना को लगा तो उनकी सर्वज्ञता भूल गयी। उन्हें वह कुटिया खींच लेती थी और रोकर सर्वेश्वर, पूर्णकाम, आत्माराम उस खिचड़ी की पुकार करता था।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

तुलसीदल मात्रेण जलस्य चुलुकेन वा।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः।।

पदार्थ की मात्रा नहीं और पदार्थ की जाति नहीं–आप क्या दे रहे हैं और कितना दे रहे हैं, इसे नन्द–नन्दन के नेत्र नहीं देखते। इसे दीखता है आपके हृदय का प्रेम और यदि वह प्रेम आप में है, श्याम अनन्त है न, इसे सब अनन्त ही दीखता है।

एक दल तुलसी का– वह भी न सही, एक चुल्लू जल और उसको तो वह इतना महान, इतना मूल्यवाद मानता है कि इसे सूझता नहीं कि उसके बदले यह क्या दे दे। उसके बदले यह अपने आपको भक्तों के हाथ बेच देता है, सदासदा को भक्त का अनुचर बन जाता है।

यह रसिकशेखर स्वयं कहता है–

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

(गीता 9.26)

पत्र–तुलसीदल, फूल, फल या जलमात्र – जो कुछ भी मेरा भक्त मुझे देता है, भक्त के उस उपहार को मैं खाता हूँ–केवल खाता ही नहीं, 'प्रयतात्मनः अश्नामि' बड़ी एकाग्रता से, तन्मय होकर, बड़े स्वाद से रस ले–लेकर खाता हूँ।

धन्य हैं वे, जो कन्हाई को कुछ दे पाते हैं भिक्षा के सही–सुदामा के समीप चार मुट्ठी चिडड़े तो थे अपने इस मयूरमुकुटी सखाको समर्पित करने के लिए। अभाग्य तो यहाँ है कि वे भी नहीं है। भिक्षा माँगी नहीं जाती और जो कुछ है–मोहन का ही दिया है। उसी ने जो स्वयं जुटाया.......।

किन्तु मैं या आप ऐसी वस्तु पायेंगे कहाँ जो श्रीकृष्ण की न हो। कन्हाई के दान के बिना तो कुबेर भी कंगाल है। श्रीकृष्ण को कहाँ स्मरण रहता है कि उसने किसे क्या दिया। उसी का

पटुका उसी के कंधे से उठाकर दो क्षण बाद सखा फिर उसके कंधे पर रख देते हैं तो यह पटुके को छूकर, उठाकर देखता है– 'सखाने कैसा सुन्दर पटुका दिया मुझे!'

'यह तो तेरा ही पटुका है।' कोई कह कर देख ले।

'कहाँ! मोहन तत्काल अस्वीकार कर देगा– 'मेरा पटुका इतना सुन्दर कहाँ था। यह तो मेरे मित्र का है–उसने दिया है मुझे।'

उसी की वस्तु उसे देनी है और यह मैया यशोदा का लाल इतना सरल है कि उस उसे आपका उपहार मानकर ही ग्रहण करेगा। उस उपहार को इतना–इतना बहुमूल्य मानेगा कि इसे कभी नहीं सूझेगा कि उपहार के बदले क्या–क्या कितना–कितना देने पर प्रत्युपकार पूर्ण होगा।

एक दूर्वादल, एक किसलय, एक पुष्प दो बूँद जल–कुछ भी; किन्तु प्रेम से हृदय के सच्चे प्रेम से दिया प्रेमोपहार तो श्रीकृष्ण अनन्त–अनन्त समझकर ग्रहण करता है और कपने को भी देकर समझता है– 'मैंने तो कुछ दिया नहीं। कहाँ, मैंने तो कुछ नहीं दिया इस असीम अनन्त प्रेम के प्रति।'

(5)

'आप युधिष्ठिर को धर्मोपदेश क्यों नहीं करते? आपके सम्मुख उपदेश करने की योग्यता तो विधात में भी नहीं है। अर्जुन के बाणों से मेरा रोम–रोम विद्ध हो चुका है। बड़ी वेदना है शरीर में। इस पीड़ा में उपदेश करना मेरे लिए सम्भव नहीं है।' शरशय्या पर पड़े भीष्मपितामह ने श्रीकृष्णचन्द्र से बड़ी दीनता से प्रार्थना की थी क्योंकि श्यामसुन्दर पाण्डवों को साथ लेकर उनके समीप पहुँचे थे। वे आज्ञा कर रहे थे कि पितामह धर्मराज को धर्मोपदेश करें।

'आपके शरीर की वेदना तत्काल दूर हो जाय।' श्रीकृष्ण ने संकल्प किया। जिनका संकल्प कोटि–कोटि ब्रह्माण्डों की सृष्टि एवं प्रलय करता है, उनका संकल्प–पितामह को लगा कि उनका पूरा शरीर शीतल हो गया। कहीं जलन नहीं, वेदना नहीं, कष्ट नहीं। शरीर शरोसे छिदा पड़ा है, शरशय्या पर वैसे ही पड़े हैं; किन्तु लगता है कि पूरे देह में भली प्रकार चन्दन का लेप अभी–अभी किया गया है। चित्त की व्याकुलता लुप्त हो गयी। स्वस्थ, शान्त, निर्मल चित्त हो गया।

'दयाधाम!' भीष्म का कण्ठ भर आया। वे बोले– 'धर्म के परमाश्रय! मेरे शरीर की पीड़ा तथा चित्त की विकलता लुप्त हो गयी।

बुद्धि स्वस्थ है, किन्तु आपके रहते मैं उपदेश करूँ?'

'पितामह! उपदेश तो आप ही करेंगे!' पार्थ–सारथि ने कहा– 'मेरा यश बहुत है लोक में। मेरी इच्छा है कि आपका यश भुवन में प्रसृत हो। आप धर्म के कितने बड़े मर्मज्ञ हैं, वह विश्व जान ले!'

'आप की आज्ञा!' भीष्म को आज्ञा–पालन करना पड़ा।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

मानद: स्वसुहृदां वनमाली। (भागवत)

श्याम का स्वभाव है अपने सुहृदों–अपने स्वजनों को सम्मान देते रहना। वैसे यह बहुत नटखट है। बड़ा गम्भीर अवसर था, तब जब इसने पितामह भीष्म के सामने स्वीकार किया– 'मैं आपको यशस्वी बनाना चाहता हूँ।'

एक तो पितामह बड़े–बूढ़े, दूसरे शरशय्या पर पड़े मरणासन्न, तीसरे युधिष्ठिर शोक–विह्ल। चारों ओर युद्ध–भूमि में बिखरे शवों के अवशेष, टूटे–फूटे रथ तथा अस्त्र–शस्त्र–खण्ड। ऐसे वातावरण में चपलता की नहीं जा सकती थी। केवल यहीं एक बार गम्भीर होकर कन्हाई ने स्वीकार किया कि पितामह को यशस्वी बनाना चाहता है। अन्यथा यह स्वीकृति इसके स्वभाव में नहीं है।

यह चपल सम्मान देगा और दिखलायेगा ऐसा कि स्वयं इसने कुछ किया नहीं है। जिसे सम्मान देगा, वह तनिक भी अभिभूत न हो–ऐसा रूप बनायेगा।

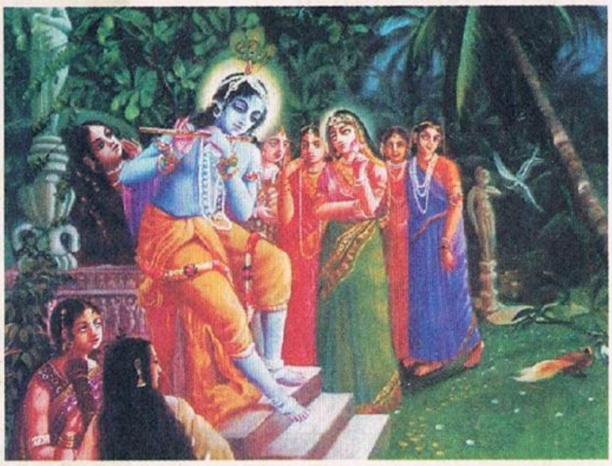

एक सखाने कहा– कनूँ! तू सात दिन हाथ पर गिरिराज उठाये रहा?'

'हाँ– मैं सात तो क्या, सत्तर दिन उठाये रह सकता हूँ।' मोहन ने ताली बजायी और हँसा– 'क्यों सुबल! तू, भद्र! वरूथप! –तुम सब पहले–जैसी लकुटियाँ खूब बलपूर्वक टेके रहोगे न?'

लीजिये, अब लगता है कि गोवर्धन सुबल, भद्र, वरूथप की लकुटियों पर टिका रहा था। गोपकुमार तो यही समझते हैं; क्योंकि उनका यह सुकुमार सखा कहीं पर्वत उठा सकता है?

'सखा तो बच्चे हैं– उल्टा–सीधा तो समझा देते है यह गोपों को, गोपियों को। इसका कहना है– 'दाऊ दादा पास हो तो मुझे किसी का भय नहीं लगता।'

नन्दबाबा, मैया यदोदा, सभी गोप–गोपियाँ समझते हैं कि दाऊ वन में साथ रहता है तो

कोई दैत्य–दानव श्याम का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। दाऊ–वे तो बल हैं। उनकी शक्ति, उनका साहस–उनकी सुरक्षा में होने से ही तो सुकुमार कन्हाई बड़े–बड़े असुरों को खेल–खेल में मार देता है।

'सखाओं में सबसे बलवान् कौन?' कोई पूछ देखे। 'मैं!' कन्हाई पहले कूद खड़ा होगा। यह इसकी पद्धति है।

''तू भद्र से बलवान है?' अब प्रश्न करो।

'हाँ हूं! क्या हुआ कि मललयुद्ध में भद्र मुझे पटक लेता है! मुझे पटक तो लेता है वरूथप, मणिभद्र, सुबल......।' अब सब आपको पटकनी दे लेते हैं; किन्तु सबसे बलवान् आप हैं, इसको कोई न स्वीकार करे तो मोहन का दोष?

मथुरा में कंस के अखाड़े में मल्लप्रमुखों को महाप्रयाण का मार्ग दिखाकर, उन सबके शवों के मध्य ही सखाओं को खींच लिया आपने अखाड़े में और सखा पटकनी दे देते, यदि महाराज कंस के सिर पर काल न सवरा हो गया होता। उस भरी सभा में सम्मान इसलिए रह गया कि कंस बीच में ही बावला होकर चिल्लाने लगा!

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

'श्याम! बाबाकी पादुकाएं तो उठा ला! माता रोहिणी, मैया यशोदा अथवा कोई आदेश दे देता है और नन्हा कन्हाई मस्तक पर धर कर पादुकाएँ लाता है।

'मोहन! वह पाटा तो ला।' कोई गोपी अपने या किसी को बैठने के लिए पाटा मँगा लेती है।

'कृष्ण! तनिक नाच तो सही!' चुटकी या ताली बजाकर गोपियाँ इस मेघसुन्दर को 'ताथेइ–ताथेइ ताता थेइ थेइ', नचाती ही रहती हैं।

देवर्षि नारद इसके गुणगान करते नहीं थकते और यह है कि मैया से सायंकाल गोचारण से लौटने पर एक–एक सखा की भूरि–भूरि प्रशंसा करता है। प्रशंसा भी अपने ढंग से। यह कहेगा– 'मैया! तू इस सुबल को डाँट तो सही।'

'क्यों लाला?'

'यह पक्का कृपण बन गया है।'

'अरे, सुबल! कृपण बन रहा है तू?' मैया हँसकर ही पूछेगी; क्योंकि वह जानती है कि उसके पुत्र के शब्द–कोष में शब्दों के जो असाधारण अर्थ हैं, उनका ज्ञान देवी हंसवाहिनी को भी

हो नहीं सकता।

'हाँ, मैया! भद्र, तोक, वरूथप....... ये सब–के–सब कृपण हैं। मैया, ये तो सब जन्म से कृपण हैं। कृष्णचन्द्र अपना स्पष्टीकरण करेगा– 'घर से जो कुछ कलेऊ लेकर जायेंगे या वन में जो फल–फूल पायेंगे, एक भी नहीं खायेंगे। सब मेरे ही पीछे पड़े रहते हैं– यह बड़ा मधुर है–तू खा ले!' मैं इनको न बाँटू तो ये भूखे ही रह जायँ।'

'मेरा लाल सखाओं का बहुत ध्यान रखता है।' मैया हँसती है।

'मैया! ये सब मेरे ही पीछे पड़े रहते हैं – धूप में मत खड़ा हो। पेड़ पर मत चढ़! दूर तक दौड़ेगा तो थकेगा।' मुझे आदेश दे–देकर तंग कर लेते हैं ये सब।'

'ओह! ये तो सब–के–सब मेरे पुत्र को तंग करते हैं।' मैया हँसते–हँसते डाँटती है सखाओं को।

'यह स्तोक पुष्प बड़े सुन्दर लाता है। बेचारा नन्हा स्तोक भी नहीं बचता, लेकिन लगायेगा मेरे ही केशों में। मैया यह मुझसे छोटा है। इसे मैं खिलाऊँ, सजाऊँ–यह मेरा अधिकार है न? यह तो उल्टे कमलपत्र लेकर मुझे ही व्यजन कराने बैठ जाता है। तू कम–से–कम इसे तो मार लगा।'

कन्हाई के स्तवन की परिपाटी है यह! यह चपल सम्मान भी देगा और दिखायेगा ऐसा कि पूछिये मत–

द्वारकानाथ, द्वारकाधीश के नाम से आप भले श्रीकृष्णचन्द्र को पहचानते हों और भले द्वारका की राजसभा में श्याम की सम्मति ही सर्वोपरि मानी जाती हो; किंतु यादव महाराज उग्रसेन हैं अपने हाथों कन्हाई ने जिनको कारागार–मुक्त किया, उनको सिंहासन पर अभिषिक्त करके यह उनके सम्मुख हाथ जोड़कर अत्यन्त विनम्र खड़ा होता है और जब उनसे कुछ कहना होता है– 'देव! निवेदन है' कहकर बोलता है।

'जैसी आज्ञा, प्रभु!' उग्रसेन के सम्मुख श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं। वे श्रीकृष्ण, जिनका आदेश पालन करने में समस्त लोकपाल अपना गौरव मानते हैं।

धर्मराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया और वे एकच्छत्र सम्राट् हो गये, किसकी शक्ति से, किसकी अनुकम्पा से यह हुआ? श्रीकृष्ण सहायक न होते, सचमुच धर्मराज राजसूय यज्ञ करने में सफल हो जाते?

श्रीकृष्ण नरेश नहीं हैं; वे राजसूय नहीं कर सकते थे। महाराज उग्रसेन तो राजसूय कर सकते थे?

उग्रसेन: क्षिती शेशो यद् व आज्ञापयत् प्रभु:।
तदव्यग्रधिय श्रुत्वा कुरुध्वं माविलम्बितम्।।

(श्रीमद्भा. 10.68.21)

बलरामजी ने भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधनादि सबसे कहा था–'प्रभु–सर्वसमर्थ महाराजाधिराज उग्रसेनजी तुमलोगों को जो आज्ञा दे रहे हैं, उसे स्थिर बुद्धि से सावधानीपूर्वक सुनकर उसका पालन करो। इस आज्ञा के पालन में देर मत करो।'

कौरवों को भ्रम हो गया–उनको लगा कि बलराम डींग मार रहे हैं। उन्होंने उग्रसेनजी को सम्राट् एवं आज्ञा देने का अधिकारी मानना अस्वीकार किया और लगे हाथ उन्हें उसका फल मिलता दीख पड़ा। दो घड़ी भी बीती नहीं और लगा कि पूरा हस्तिनापुर गङ्गा के गर्भ में जा रहा है। हाथ जोड़े, रोते–चिल्लाते बलरामजी की शरण जाना पड़ा उन्हें।

'उग्रसेन सम्राट्! सम्राटों के भी सम्राट्! आप उससे भी बड़ा कहें तो वह भी! हल–मुसल लिये नीलाम्बर–परिधान आप किसी पूथ के भिक्षुक को–कुत्ते को भी सम्राट कहें तो सुरपति भी उसको अपना सम्राट् मानने को बाध्य है। उग्रसेनजी तो फिर भी यादव महाराज हैं।'

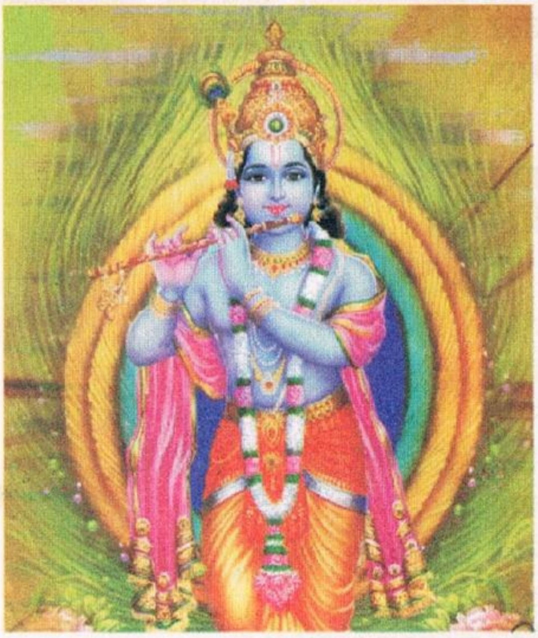

किंतु श्यामसुन्दर–हलधर का यह अनुज! इसने उग्रसेनजी को, –अपने कुल को सम्राट्पद कहाँ दिया?इसने सम्राट्पद दिया युधिष्ठिर को। युधिष्ठिर के इस राजसूय यज्ञ में इसकी प्रथम पूजा हुई – यह पाण्डवों का प्रेम; किंतु उस यज्ञ में इसने सेवा क्या ली थी, यह पता है आपको?

अतिथियों के पाद–प्रक्षालन तथा जूठी पत्तलें उठाने की सेवा ली थी श्रीकृष्ण ने।

राजसूय यज्ञ में स्वजन कुछ–न–कुछ कार्य कर रहे थे। दानाध्यक्ष थे कर्ण। महाराजाधिराज को देश–देश के नरेश उपहार भेंट करने लाये थे। उन उपहारों को स्वीकार करने का गौरवपूर्ण पद प्राप्त हुआ था–दुर्योधन को, भोजनालय की व्यवस्था भीमसेन करते थे और श्रीकृष्ण पैर धुलाते थे आगतों का तथा जूठी पत्तलें उठाते थे।

महाभारत का युद्ध ही पाण्डव किसके बल पर जीत सके? किंतु श्रीकृष्ण तो अर्जुन के सारथि थें सारथि भी अधूरे नहीं–पूरे। रथ के घोड़ों को वे युद्धभूमि से लौटकर मलते थे, टहलाते थे। घोड़ों को घास–दाने की व्यवस्था सँभालते थे और रथ से पहले उतरकर अर्जुन को हाथ का सहारा देकर रथ से उतारते थे।

श्रीरघुनाथ ने क्या किया? पूरी रामायण पढ़ लीजिए। अपनों को पद–पद पर सम्मानित ही तो किया है उन मर्यादा–पुरूषोत्तम ने। विभीषण शरण में आये तो सुग्रीव से पूछते हैं– 'मित्र! रावण का भाई मिलने आया है। क्या करना चाहिए?'

यह भिन्न बात है कि सुग्रीव ने जो सम्मति दी, वह उचित नहीं लगी; किंतु सम्मति का सम्मान करके ही आगे कुछ कहा गया। पहली बात यही– 'मित्र! तुमने बड़ी अच्छी नीति की बात कही है।'

विभीषण को अपना लिया तो उनकी बात मानकर तीन दिन निर्जल व्रत करते हुए समुद्र किनारे कुशासन पर बैठे सागर से मार्ग देने की प्रार्थना करते रहे।

खेल में कन्हाई प्राय: हारता है ब्रज में। दाऊ दादा का दल जीतता है और वे साथ न हों तो विजय श्रीदामा के पक्ष की होती है। श्याम की पीठकर विजयी सखा चड़ढी कसते हैं।

अयोध्या की रीति–नीति इससे भिन्न नहीं है। भिन्न हो भी नहीं सकती। भरतलाल चित्रकूट में भरे कण्ठ अपने बाल्यकाल का स्मरण करके कह रहे हैं–

मैं प्रभु कृपारीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिंमोही।।

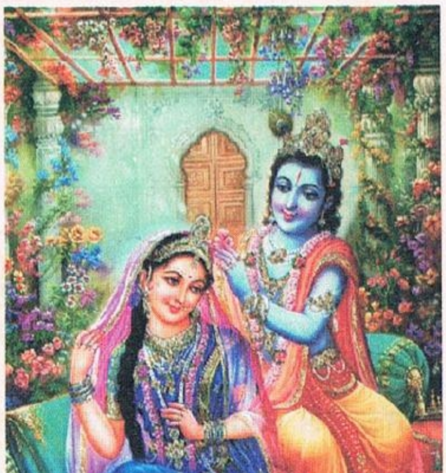

मर्यादा–पुरूषोत्तम हैं, अत: पारखी प्राणों से 'कृपारीति' छिप नहीं पाते। लेकिन बाबा नन्द का नटखट लाल–यह तो खेल में सखा को विजयी कर देगा जान–बूझकर और फिर झगड़ेगा– 'मैं विजयी हुआ। दाव तु दे! मैं नहीं देता दाव!'

गोपियाँ हों या गोपकुमार–कन्हाई रूठे को मनाता है। हाथ जोड़कर, पैर पड़कर–जैसे भी कोई मान जाय। किंतु इसे रूठना नहीं आता। इसका यह असीम स्नेह ही तो औरों को रूठने की प्रेरणा देता है। इसे चिढ़ाना आता है, खिझाना आता है किंतु रूठना नहीं आता। अपनों से ब्रजराजकुमार कभी रूठता नहीं–रूठ सकता ही नहीं। लोग कहते हैं–'दैव रूठ गया।' रूठता होगा दैव, किंतु हमारा कृष्ण तो सदा तुष्ट ही रहता है। इसे तो रूठे को मनाना ही आता है।

कन्हाई का सम्मान–कोई क्या सम्मान देगा इस ब्रज के युवराज को?बड़े–बड़े ऋषि मुनि इसकी स्तुति करते थकते नहीं। ब्रह्मा, इन्द्र, शारदा ही नहीं–भगवान शशाङकशेखर भी इसके पदों में सर झुकाते हैं; किंतु स्तुति–प्रणति करके क्या इस चपल को गम्भीर बनाना अच्छा लगता है?इसे ही क्या यह सब रूचता है?

प्रणाम करने जाओ तो यह अँगूठे दिखायेगा और तुम्हारी पूजा करने लगेगा। इसका श्रृंगार करने बैठो तो यह उलटा तुम्हारा श्रृगांर कर देगा। यह मदनमोहन–अपनों की सेवा, अपनों का सम्मान करने में ही इसके प्राण बसते हैं।

(6)

श्रीकृष्णचन्द्र शिशु ही तो है। इसे पकड़ना आता है; किंतु छोड़ना नही आता। बहुत शीघ्र पकड़ लेता है यह। कोई हाथ, कोई अँगुली इसके समीप कीजिये, इसके नन्हें कोमल, कमलारूण कर उसे पकड़ने को उत्सुक ही रहते हैं। यह तो समीप आनेवाले मुख की नाक तक पकड़ने को हाथ बढ़ा देता है। एक बार इसकी पकड़ में कुछ आ जाय बस! आप फिर बल लगाते रहिए, उछलते–कूदते रहिए, नन्दलाल ने जो पकड़ा–बस पकड़ लिया। छोड़ने की कला इसे नहीं आती और किसी ने इसे यह कला सिखलायी नहीं। गोप के घर तो एक ही शिक्षा बाबा, मैया और दूसरे सब देनेवाले हैं–'अपना बनाकर त्यागना नहीं।'

कन्हाई को पूतना ने गोद में उठाया था। स्तनों में हलाहल विष पोतकर आयी थी वह बालहत्यारिणी राक्षसी। शिशुओं का रक्त उसका प्रिय पेय था। श्यामसुन्दर के मुख में भी उसने स्तनाग्र दे दिया। मोहन ने वक्ष नन्हें करों से पकड़ लिया और दूध पीना आरम्भ किया। इसे लगा–'यह अच्छी धाय मिली।'

अब पूतना लाख चिल्लाये, हाथ–पैर पटके और भागे–दौड़े, क्या होनेवाला था! मैया यशोदा के लाल को तो वह धात्री लगी और उसने पकड़ लिया उसे। अब पूतना तो क्या, पूतना के निर्मिता में शक्ति है कि कृष्ण के हाथ से उसकी धाय को छुड़ा लेगा?

गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातुकी गति दई ताहि कृपालु जादवराई।।

पूतना राक्षसी–रूकिये! राक्षसी तो वह जब थी, तब थी। राक्षसी को तो मरना था और मर गई वह। उसे तो नन्दबाबा के गोपों ने टुकड़े–टुकड़े काटकर भस्म कर दिया। पूतना श्याम की धाय–जैसे ही कृष्ण ने उसके स्तन में अपना नन्हा, कोमल मुख लगाया, वह कन्हाई की धाय–माँ हो गयी। वह होना चाहती थी या नहीं, इसका प्रश्न कहाँ उठता है। मैया यशोदा का लाल कहाँ किसी विधानसभा का अध्यक्ष है कि वह लोगों की सम्मति लेता फिरे?पूतनाने उसे दूध पिलाना चाहा, उसने दूध पीना प्रारम्भ किया तो पूतना धाय हो गयी और हुई सो हुई। श्रीकृष्ण को छोड़ना जो नहीं आता। धात्री बना ली–सदा को बनाली वह तो।

'अहो बकी यं स्तनकालकूट–जिघांसयापायदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचिता ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं ब्रजामि।।

(श्रीमद्भागवत)

नित्य–लोक भेज दी पूतना को और वहाँ भी धाय बनाकर। सदा–सदा को मोहन को दूध पिलाने का कार्य मिला उसे।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

वह आया था तृणवर्त ब्रज में। आया था बवंडर बनकर। वह और कुछ करता, उसने श्रीकृष्ण को क्यों उठाया? कोई श्याम को गोद में उठा ले और असुर बना रहे, यह भी क्या बनने योग्य बात है? उसने गोद में उठाया और ले उड़ा। अब नन्हें शिशु को आप गोद में लेकर ऊपर उछालेंगे तो वह आपके गले में चिपटेगा नहीं?

'छोड़! छोड़!' तृणावर्त मूर्ख ही तो था। नन्दनन्दन ने पकड़कर किसी को छोड़ा है या उसी को छोड़ देगा? गला घुटता है, असुर मूर्छित, मृत होकर शिलापर गिरता है– यह सब तो होना था। श्रीकृष्ण को गोद में लेकर असुरत्व को तो मरना ही होगा। सूर्य का आवाहन भी करेंगे आप और रात्री को बनाये भी रखना चाहेंगे तो यह आपकी बात चलेगी?

एक तृणावर्त की बात ही क्या–जो असुर ब्रज में आया, उसका असुरत्व मारा गया। मरता तो देह ही है। सुर–असुर देह ही होता है। आत्मा, अरे, ब्रज में आया, उसका आत्मा तो ब्रजेन्द्रनन्दनका अपना ही हो गया। अपनाकर त्यागना यह गोपकुमार के शास्त्र में नहीं है।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

श्रीकृष्ण नहीं देखता कि उसके समीप सुर आते हैं या असुर! जो पकड़ने आता है, उसे पकड़ लेता है। पकड़ लेता है तो छोड़ना जानता नहीं। जिसे श्रीकृष्ण पकड़ लेगा, वह न सुर रहेगा, न असुर। अग्नि में चंदन डालो या बबूल–दोनों अग्नि बन जाएँगे। जिसे श्रीकृष्ण पकड़ लेगा, वह श्रीकृष्ण का अपना हो जायगा। उसका स्थान गोलोक।

आप कैसे हैं, इसे कोई पूछेगा नहीं। किसने कहा कि परम शुद्ध–चरित, विमलचित्त, योगी–ज्ञानी धर्मात्मा को ही श्रीकृष्ण अपनाता है? ब्रजेन्द्रनन्दन को तो किसी हत्यारे असुर को पकड़ लेने में आपत्ति नहीं है। इस अहीर के बालक के लिए तो कोई अछूत है ही नहीं। आप इसे पकड़ना, इसे अपनाना चाहते हैं या नहीं, यह आप अपने हृदय से पूछिये?

शीघ्रता मत कीजिये। श्रीकृष्ण को आप पकड़ भी लें और असुरत्वको बचाये भी रहें, यह दोनों बात नहीं बनेगी। काम, क्रोध, लोभ, मोह–देह की परिवार की संसार की आसक्ति–यह असुरत्व है। पद–प्रतिष्ठा, धन–परिवार, सुख–स्वास्थ्य सब बना रहे और श्रीकृष्ण भी मिल जायें–बड़ा झूठा लोभ है। नाम–रूप का मोह–देह की आसक्ति ही असुरत्व है और इसे बनाये रखना है तो ब्रजराज के कुमार से दूर ही रहना चाहिए आपको।

मैं कहाँ कह रहा हूँ कि आप निर्दोष, निरासक्त होकर व्रजेन्द्रनन्दन के समीप आवें। इसे तो धूलि–कीचड़ में लिपटे सखाओं को अंकमाला देने का व्यसन है। आप जैसे हैं, वैसे ही इसके

समीप आ सकते हैं। वैसे ही यह आपको पकड़ लेगा–हाथ आये को पकड़ लेना इसका स्वभाव है। मैं कह यह रहा हूँ कि आप आयें तो प्रस्तुत होकर आयें कि श्रीकृष्ण के पकड़ते ही असुरत्व की मृत्यु निश्चित है।

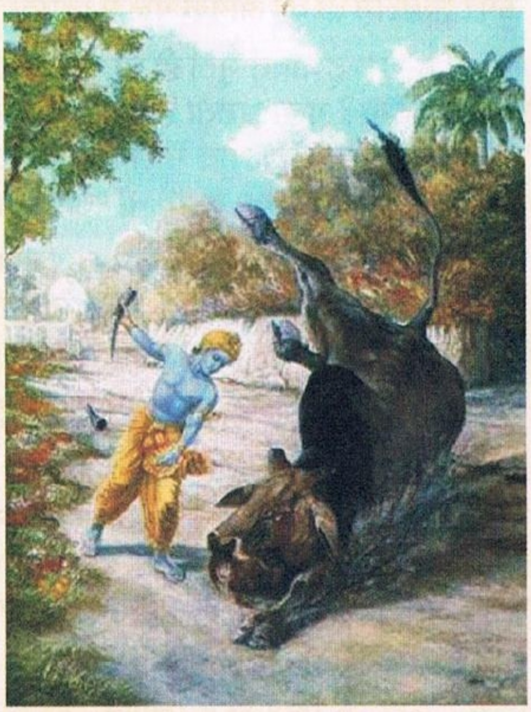

व्रज में आया प्रलम्ब। सुर था वह; किन्तु गोपकुमार बनकर आया। उसने समीप आकर श्याम से कहा–'मुझे भी अपने सखाओं में मिलाओगे? साथ खेलने दोगे मुझे?'

'हाँ–हाँ!' आओ, श्रीकृष्ण को अस्वीकार करना कहाँ आता है। वह तो सदा उत्सुक रहता है अपने सखाओं की संख्यावृद्धि करने को। गोपों का–अहीरों का यह सनातन स्वाभाव है कि अपने दल की वृद्धि को वे सदा उत्सुक रहते हैं।

श्यामसुन्दर ने प्रलम्ब को पहिचाना नहीं? ऐसी आशंका तो किसी वज्र–मूर्ख को ही होगी। कन्हाई के कमल–दलविशाल लोचनों से कुछ छिपा लेना ब्रह्मा के भी वश के बाहर की बात है' किन्तु कोई अपने स्वभाव का क्या करे? श्रीकृष्ण का स्वभाव है–सबको स्वीकृति देना। अस्वीकार करना इसने सीखा नहीं। असुर को यह सखा न बनावे–सुरत्व को साथ लिये जीव इसके श्रीचरणों की शरण पाने–की आशा कैसे कर सकता है?

प्रलम्ब को केवल सखा ही नहीं बनाया श्रीकृष्ण ने। उसे बहुत सम्मान दिया। उसे अपने दल में रक्खा। उसकी सम्मति के अनुसार उस दिन खेल प्रारम्भ हुए। प्रलम्ब असुर था और असुरत्व को स्वयं श्रीकृष्ण से डर लगता है। प्रलम्ब को लगा–छोटा भाई दुर्धर्ष हो तो बड़े को ही ले उड़ो।

बुद्धू था प्रलम्ब! क्षमा करें–असुर सदा मूर्ख होते हैं असुरत्व की सब वृत्तियाँ हैं। बड़े–से–बड़ा विद्वान्, बुद्धिमान जब लोभ, मोह, काम, क्रोध, आसक्ति के चक्कर में आता है, कम–से–कम उस समय तो मूर्ख हो जाता है।

'जिमि कुपन्थ पग देत खगेसा।
रहइ न बुधि बल तन लव लेसा।।'

प्रलम्ब सुर था। अतः मूर्खता तो अवश्यमभावी थी उससे। कन्हाई तो कुछ हल्का भी होता, दाऊ कभी हल्के हुए हैं? बड़े भाई का गुरूत्व प्रलम्ब को भारी पड़ने लगा और उसे अपना रूप–अपना असुर–रूप प्रकट करना पड़ा। फिर तो बलराम के मुष्टि प्रहार से असुर–की कपाल–क्रिया हो गयी!

असुर मर गया। असुर ही मरता है श्रीकृष्ण के समीप आकर। प्रलम्ब को तो सखा बनाया था

नन्दनन्दन ने। वह तो सदा के लिए श्याम का सखा बन गया। श्रीकृष्ण की स्वीकृति तो शाश्वत स्वीकृति है।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

प्रलम्ब के समान ही आया था व्योमासुर भी गोप बालक बनकर। मायावियों के परमाचार्य दानवश्रेष्ठ मय का पुत्र व्योम महामायावी। कंस का मित्र अत्यन्त छल–चतुर और आया बड़ी निष्ठुरता लेकर। व्रजराजतनय यह सब देखा नहीं करता। व्योम को सखाओं में मिल जाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। गोपकुमार न सही वेश तो गोपकुमार का ही था। व्योम की भी वह सम्मान मिला जो किसी नवीन सखा का संकोच दूर करने के लिए पहले दिन आवश्यक है। उस दिन की क्रीड़ा में व्योम की सम्मति का सत्कार हुआ।

व्योम सखा बनकर सचमुच क्रीड़ा करने तो आया नहीं था। उसे तो अपनी क्रूरता की आहुति देनी थी। वह गोपकुमारों को एक–एक करके अन्धकार भरी गुफा में बन्द करने लगा। गुफाद्वार पर भारी शिला रख दी उसने।

श्रीकृष्ण के सखाओं को कोई बन्दी रख सका है? ब्रह्मा जी भी एक बार बछड़े और गोप–बालकों को उठा ले गये थे। वह शिक्षा मिली उन्हें कि पूरे जीवन नहीं भूलेगी। बार–बार कन्हाई के चरणों पर उठते–गिरते रहे देरतक और मयूरमुकुटी बोला तक नहीं। गोपबालक, बछड़े सब लौटा दिये, बड़ी लम्बी स्तुति की, किन्तु श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को दो शब्द तो अनुग्रह के नहीं सुनाये!

सृष्टिकर्ता गोपकुमारों को किसी दुर्भाव से नहीं ले गये थे। उन्हें केवल नन्दतनय की कोई रूचिर लीला देखनी थी, किन्तु व्योम तो बन्दी बनाकर मार देना चाहता था सखाओं को। श्रीकृष्ण को कदाचित ही कभी क्रोध आता हो। नित्य सुप्रसन्न आनन्दकन्द श्रीव्रजचन्द्र, किन्तु कोई उसके जनों पर कुटिल दृष्टि उठावे.....। भक्तापराध क्षमा करना भगवान को नहीं आता और वह ब्रजराज कुमार तो सर्वथा अपनों का है।

श्रीकृष्णचन्द्र ने बहुत असुर मारे हैं। धरापर यह आया ही भूभार हरण करने, किन्तु इसकी भृकुटि पर बल नहीं पड़ा। क्रोध कभी नहीं आया इसे। चक्र उठे या न उठे, असुर–संहार सदा खेल–खेल में किया इसने। जिसे भी मारा–क्षण में मार दिया; किन्तु व्योम ने जो कुटिलता की–कन्हाई को रोष नहीं, क्रोध आया। क्रोध भी ऐसा कि श्याम जैसे अपना दयामय स्वभाव भूल ही गया।

'यह मेरे सखाओं पर हाथ उठाता है! सखाओं को बन्दी करके मारना चाहता है। एक

गोपकुमार को जब व्योम ले जा रहा था, गुफाद्वार पर ही श्रीकृष्ण ने उसे पकड़ लिया। व्योम अपने दानवरूप में आ गया—व्यर्थ! असुर, दैत्य, दानव, राक्षसवेश कृष्णचन्द्र को भयभीत करेगा? लात, थप्पड़, घूँसे—श्याम सचमुच असीम क्रोध में था आज। इसने अन्धाधुंध

पीटना प्रारम्भ किया व्योम को। यह भी इसने नहीं देखा कि असुर—देह कब गिरा, कब मूर्च्छित हुआ, कितना तड़पा—चिल्लाया और कब मर गया। कन्हाई पीट रहा था और पीटता चला गया। व्योम की हड्डियाँ पिस गयी! शरीर मांस का लोथड़ा बन गया और लोथड़ा स्थान—स्थान से कट गया।

यह सब हुआ—असुर के साथ, असुर—देह के साथ तो यह सब हुआ, किन्तु व्योम का क्या हुआ?उसका होना भी क्या था। वह गोपकुमार बनकर श्रीकृष्ण के समीप आया था। श्रीकृष्ण ने उसे सखा के रूप में स्वीकार किया था। दानवदेह तो विनाशी था। विनष्ट हो गया। रूप अविनाशी जिसे श्याम ने अपना बनाया। व्योम को वह अविनाशीरूप—गोपकुमार—रूप प्राप्त होना था। वही रूप उसका अपना रूप है और वह रूप तो उससे कन्हाई भी छीन नहीं सकता था।

कोटि बिप्र बध लागइ जाही।
आए सरन तजउँ नहिं ताही।।

ये अपने वचन हैं मार्यादापुरूषोत्तम के। कोई आये—सम्मुख आये तो सही। किन्तु एक बात अवश्य श्रीरघुनाथ ने स्पष्ट कर दी है—

जौ पै कुटिल हृदय सो होई।
मोरे सनमुख आव कि सोई।।

दम्भी सन्मुख नहीं आ सकता। पापी, अपराधी—असुरतक समीप आ सकता है; किन्तु दम्भी तो सम्मुख ही नहीं आ सकता। कोई सम्मुख ही न आवे तो दयाधाम क्या करें?

'सकृत प्रनाम किएँ अपनाए।'

सम्मुख आकर कुछ साधन—भजन, पूजा—पाठ, जप—तप, योग—यज्ञ, सेवा, सत्कार' यह सब कुछ आवश्यक नहीं। एक बार मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और वे उदार चक्र—चूड़ामणि दोनों भुजाओं में भरकर हृदय से लगा लेने को पहले से उत्सुक खड़े हैं।

मत करो प्रणाम! सकृत! प्रणाम भी कौन माँगता है? रावण हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, कुम्भकर्ण, कंस—किसने प्रणाम किया था?

'जनम ते सिसुपाल दिन प्रति देत गिन गिन गारि।
लियौ ताहि मिलाइ निज मैं कृपासिंधु मुरारि।।'

शिशुपाल तो प्रतिदिन प्रात: उठकर यही सन्ध्या—पूजा करता था कि श्रीकृष्ण को गालियाँ

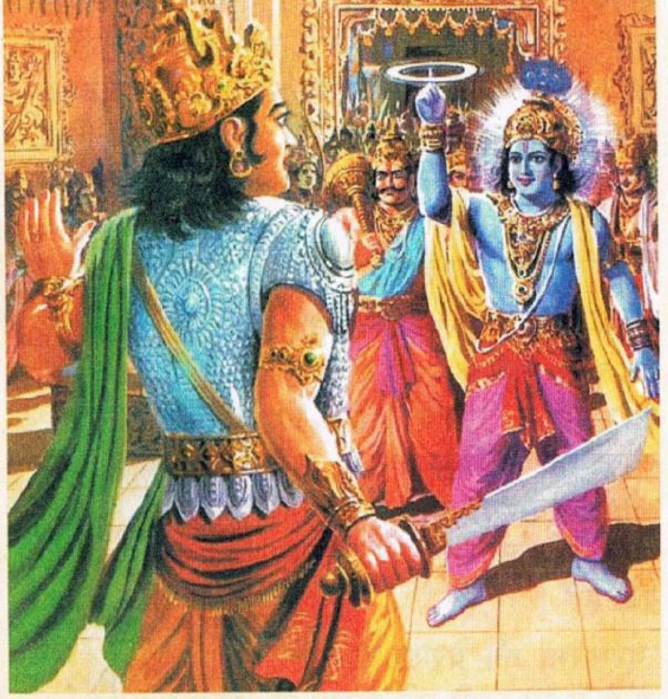

दे। गालियाँ ही दे रहा था वह जब चक्र ने उसका सिर काटा, किन्तु शिशुपाल को क्या मिला? उसे श्रीकृष्ण का सायुज्य प्राप्त हुआ।

प्रेम से पूजा करने या द्वेष से आघात करने, भाव से स्तुति करने या कुभाव से गाली देने–यह प्रश्न नहीं है कि आप कन्हाई के समीप कैसे जाते हैं? जो समीप आवे, उसे पकड़ लेगा और पकड़ लेगा तो फिर छोड़ेगा नहीं। श्रीकृष्ण का यह स्वभाव है। इसके इस स्वभाव को भूलिये मत। प्राणी भगवद् विमुख होता है माया के चक्कर में आकर। श्याम को एक बार अपना हाथ पकड़ लेने दीजिये, सब चक्कर वह दूर से ध्वस्त करता रहेगा। फिर आप कितना उछलो–कूदो, कितना ही हाथ छूड़ाना चाहो, कितना भी संसार में दौड़ने का प्रयत्न करो–यह नटखट हाथ छोड़ने से रहा और वह हाथ नहीं छोड़ेगा तो आपके पुकार ने बुलाने से माया आप के समीप आवेगी? प्रचण्ड प्रकाश के समीप खड़े होकर अन्धकार को पुकारोगे तो आपकी पुकार व्यर्थ ही तो होगी।

'नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं।'

डूबते वे हैं जो श्रीकृष्ण के नहीं हैं। तैरना उन्हें पड़ता है, जो यशोदासुत के करों में अपना कर नहीं दे ते। कन्हाई को अपना हाथ पकड़ा दिया–अब भवसिन्धु है कहाँ जो कोई उसे तैरकर पार करेगा? श्रीकृष्ण के सम्मुख तो इसकी कोई छाया भी नहीं टिकती। कोई डूबना भी चाहे तो जल होगा तब न डूबेगा?आपने जब कहा–' श्रीकृष्ण! मैं तुम्हारा।'

कन्हाई कहता है–'हां तुम मेरे।'

हो गयी बात–समुद्र तो सूख चुका; क्योंकि कन्हाई के चरणों को भी आर्द्र कर सके ऐसा समुद्र कभी न हुआ न होगा और जिसका हाथ वह पकड़ चुका, उसका हाथ छोड़ना तो इसे आता नहीं।

(7)

श्रुति–शास्त्र–संत कहते हैं–''परमात्मा परम का रूणिक, अनन्त करूणावरूणालय, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ है।''

संसार में प्रत्यक्ष दीक्ष रहा है–जीव अत्यन्त दु:खी हैं। कहीं लोग दाने–दाने को तरसते, क्षुधासे तड़पते प्राण त्यागते हैं, कहीं रोग से पीड़ित कराह रहे हैं। अभाव, रोग, शोक, भय

आदि से मनुष्य अत्यन्त पीड़ित हैं। अकाल मुख फाड़े निगल रहा है शत–शत निरीह प्राण। युद्ध, दंगे आदि में क्या–क्या नहीं होता। नन्हे शिशु जब भाले की नोक, संगीन या छुरेपर उछाल दिये जाते हैं, असहाय अबलाओं पर जब उन्मत पिशाच अत्याचार करते हैं, घर एवं मुहल्ले जब फूंक दिये जाते हैं, परमाणुबम से जब पुरा नगर दो क्षण में राख कर दिया गया–विश्व में उत्पीड़न, अत्याचार की परम्परा आज ही तो प्रारम्भ नहीं हुई। यह सब न भी हो तो रोग, शोक, अभाव ही क्या पीड़ा देने को कम हैं।

श्रुति–शास्त्र–संत जो कहते हैं, वह सत्य नहीं है–यह कहने का साहस मुझ में नहीं है और जो स्पष्ट प्रत्यक्ष विद्यमान है, उसे कोई अस्वीकार कैसे कर देगा। फिर इन दोनों सत्यों में समन्वय क्या है?

'परमात्मा की प्रेरणा से सृष्टि होती है तो उसी की प्रेरणा से प्रलय भी होता है। जीव अविनाशी है और शरीर तो नाशवान है ही। जीव अविनाशी है और शरीर तो नाशवान है ही। कोटि–कोटि शरीरों के नष्ट होने से परमात्मा का कुछ बिगड़ता नहीं।' यह बात मान ली, किन्तु जीव क्षण–क्षण दुखी रहे, वह आर्तक्रन्दन करता रहे और कोई तटस्थ द्रष्टा बना रहे उस क्रन्दन का–वह निष्ठुर होगा या दयालु?

'परमात्मा का प्रत्येक विधान मंगलमय है।' इस अकाल में, देश विभाजन के समय हुए पैशाचिक अत्याचारों में, परमाणु बम से नगरों के भस्म होने में मंगल–विधान होगा परमात्मा का, किन्तु इतना उग्रमंगल–विधान? कोई सुखकर, कोमल विधान करने में वह समर्थ नहीं है?

'जीवों का प्रारब्ध। जैसा करो, वैसा भोगो।' ठीक बात, किन्तु तब परमात्मा की दयालुता, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञता क्या काम आवेगी? परमात्मा का होना तो कर्मविधान के संचालन मात्र के लिए ही आवश्यक है न?

मैं परमात्मा की बात क्यों ले बैठा? बात यह है कि ईश्वर, भगवान परमात्मा ब्रह्म–पता नहीं

कितने नाम लोगों ने कन्हाई के रख छोड़े हैं। लोग इसका एक नाम रख देते हैं और कह देते हैं–'यह ऐसा है।'

कन्हाई स्वीकार ही करना जानता है। यह उसे अपना नाम मान लेता है और जो गुण नाम रखने वाले कहें–सब अपने में हैं, इसके लिए भी स्वीकृति में सिर हिला देता है। यह सब है, किन्तु इसके स्वभाव की एक विशेषता पहिचानी है श्रीरामानुजाचार्यजी ने।

वे कहते हैं–

'रक्षापेक्षामपेक्षते।'

यह नटखट है और खिलाड़ी है। कोई हंसे तो ताली बजाता है–रोये तो ताली बजाता है। अपने खेल में अपनी मौज में तल्लीन–सृष्टि हो या प्रलय, इस आनन्दकंद का ध्यान ही उधर नहीं जाता। इसे ध्यान दिलाना पड़ता है। आप ध्यान न दिलाओ तो इसका ध्यान प्रलय की ओर भी नहीं जायगा और ध्यान दिलाया जाय तो चींटी की टूटी टांग की पीड़ा भी इसे व्यथित कर देगी और उसकी मरहमपट्टी करने भी यह दौड़ा आयेगा।

आप ईश्वर कहो, परमात्मा कहो, भगवान कहो–कहोगे इस नन्दबाबा के पुत्र को ही और यह 'रक्षापेक्षाम–पेक्षते।' जो इससे अपेक्षा करे कि 'यह दयामय, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, मेरी रक्षा करे।', उसके लिए–केवल उसके लिए यह अनन्त दयाधाम, नित्यसर्वज्ञ, सर्वसमर्थ है और उसकी रक्षा को दौड़ा आयेगा। अन्यथा, अन्यता तो संसार में जो प्रत्यक्ष सत्य है, उसे आप देख ही रहे हैं।

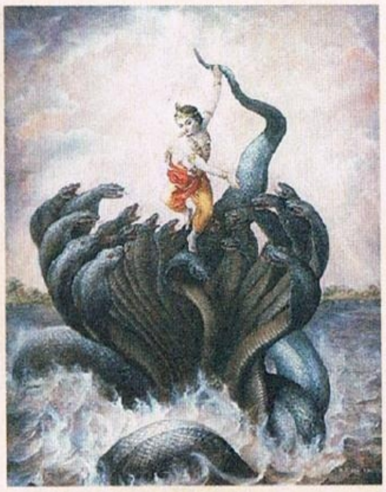

गजेन्द्र को ग्राहने जल में पकड़ लिया था। ग्राह जल में खींच रहा था और गजेन्द्र बाहर की ओर। सर्वज्ञ से छिपा था सरोबर में क्या संघर्ष हो रहा है? किन्तु कहीं कुछ हो रहा हो, इससे उस निर्गुण, निरंजन, निर्लेप से मतलब?

जी–सच्ची बात यही है कि उसे आप ईश्वर कहते है वह यह कन्हाई वस्तुत: निर्गुण, निरंजन, निर्लेप, निर्विमेष है। इसमें गुण, राग, विशेषता तो आप देते हैं। आप कहते हैं–दयामय। तब यह आपके लिये दयामय हो जाता है। अब आपने इसे दया का गुण दे दिया तो आप से यह तटस्थ कैसे रहेगा?आपपर इसका अनन्त स्नेह उमड़ेगा। आपके प्रति इसका विशेष राग होगा।

गजराज थकते गये और अन्तत: लगा कि डूबे। बड़ी कठिनाई से पास से एक कमलपुष्प सूंडसे तोड़कर ऊपर फैंकते हुए पुकार उठे–'नारायण! रक्षा करो।'

उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा।
न्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते।।

(श्रीमद्भा. 8/3/32 का उत्तरार्द्ध)

अब लीजिये–निर्विशेष सविशेष हो गया। भगवान् नारायण गरूड़ पर चढ़े दौड़े और गरूड़ का वेग भी उन्हें कम लगा तो कूदकर पैदल भागे। अब कोई ग्राह कैसे गजेन्द्र के लिए विपत्ति बना रह सकता है। अब तो सर्वलोकमहेश्वर चक्र उठाये गजेन्द्र के पक्ष में आ गया था।

वह नटखट श्याम–जबतक इसे पुकारो नहीं, कान में तेल डाले बैठा रहेगा। तबतक आपके लिए ईश्वर है ही नहीं, जबतक आपको ईश्वर स्मरण न आये और आज के मानव का दुर्भाग्य–उसके सम्मुख नृशंस अत्याचारी उसके शिशुओं की हत्या करता है, उसकी बहिन–बेटी के साथ पैशाचिक व्यवहार करता है, किन्तु उसे रोने चिल्लाने को छोड़कर ईश्वर को पुकारने का स्मरण नहीं आता।

एक बार और–आप पुलिस की, सेना की आने की आशा भी करते रहेंगे, अपनी बुद्धि या लाठी का सहारा भी लेते रहेंगे और कन्हाई को भी पुकारेंगे तो यह नहीं सुनेगा। इसका स्वभाव ही है कि यह तभी दौड़ता है, जब मनुष्य केवल इसी से आशा करता है। दूसरे किसी से, अपनी किसी भी शक्ति से किंचित भी आशा आपको है तो यह कृष्ण आप की उस आशा के सक्रिय होने में टाँग अड़ाने नहीं आयेगा। जब कोई आशा, कोई आश्रम न रह जाय–इसे पुकार लीजिये। निश्चिन्त रहिये–ऐसा पुकार अनसुनी यह कर नहीं सकता।

श्याम पुकारे बिना नहीं सुनता। कोई और आशा भरोसा रखकर पुकारो तो इसे लगता ही नहीं कि इसको पुकारा जा रहा है। यह एक ही भाषा समझता है–हृदय की भाषा और हृदय तो एक साथ एक को ही पुकार सकता है। आप केवल मुख से पुकारें तो कन्हाई समझेगा

नहीं। जो बात समझी ही नहीं गयी, उसके अनुसार कोई व्यवहार कैसे करेगा?

द्रुपदराजतनया, पाण्डवपट्टमहिषी द्रौपदी को दुर्योधन ने भरी राजसभा में पकड़ मंगाया। पाण्डव द्यू तमें हार चुके थे। वे धर्म से–अपने सत्य से बँधे थे। कुछ न कर सकते थे, न बोल सकते थे। दुर्योधन ने अपने अनुज को आज्ञा दी–''इसे नंगी कर दो।' राजसूय यज्ञ में जिसका साम्राज्ञी–पदपर अभिषेक हुआ, उसका यह अपमान। अग्रज की आज्ञा से दुष्ट दुशासन ने एकवस्त्रा द्रोपदी की साड़ी का छोर पकड़ लिया और लगा खींचने। द्रोपदी को अब भी विश्वास नहीं था कि इस सभा में दु:शासन को यह धृष्टता करने का साहस होगा, किन्तु.....

श्रीकृष्ण सर्वज्ञ नहीं हैं? उनको पता नहीं है कि क्या हो रहा है हस्तिनापुर की कौरव–राजसभा में? किन्तु श्याम का स्वभाव–द्रोपदी परमभक्त सही, कन्हाई को वह पुकार कहाँ रही है। पुकारे बिना–रक्षा की अपेक्षा किये बिना तो नन्दनन्दन कुछ करता नहीं।

'महाराज धृतराष्ट अन्धे सही, किन्तु संजय और विदुर उनको सब सूचित कर रहे हैं। पुत्रवधू को उनका ही पुत्र नंगी करने जा रहा है–कुछ कहेंगे। दादाजी, अतुल पराक्रम परमधर्मज्ञ भीष्म के विद्यमान रहते दु:शासन का यह साहस? ये रोक देंगे। गुरूदेव द्रोणाचार्य भी तो हैं। ब्राह्मण हैं और पाण्डवों की भी गुरू हैं–ये विरोध करेंगे इस अन्याय का। मेरे पाँचों पति यहीं हैं–ये कुछ करेंगे।' द्रोपदी के भयार्त नेत्र चारों ओर घूम गये। सबने सिर झुका रखा है। कहीं से कोई आशा नहीं।

'कृष्ण! श्यामसुन्दर! सदा के मेरे विपत्ति के सहायक!' प्राणों से पुकारा।

यह क्या हुआ? कन्हाई भी अनसुनी करता है? वह भी सहायता करने नहीं दौड़ा? नहीं ही दौड़ा, क्योंकि द्रोपदी ने अभी तक साड़ी हाथ से पकड़ रखी है। अपना बल अभी रक्षा में लगा है। यशोदा का लाल अभी नहीं आ सकता। दूसरा किंचित् भी भरोसा है तो यह घनश्याम बीच में नहीं पड़ता।

अबला नारी और असीम बलशाली दुष्टहृदय दु:शासन। साड़ी को झटका लगा और हाथ से छूट गयी। व्याकुल होकर द्रोपदी ने दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकारा–

'श्रीकृष्ण! द्वारकावासिन्। देवदेव! जगत्पते!'

एकवस्त्रा, राजस्वला द्रोपदी–अस्पृश्या, अपवित्र दशा, किन्तु कृष्ण के लिये क्या पवित्र, क्या अपवित्र। लो, वस्त्रावतार हो गया कन्हाई का। मूर्ख दु:शासन। कितने वस्त्र खींचेगा वह? अनन्त का कहीं अन्त हुआ है कि दु:शासन ही पा लेगा। वस्त्रों की राशि बढ़ती गयी, किन्तु द्रोपदी की साड़ी शरीर पर ज्यों–की–त्यों। थककर, पसीने–से लथपथ होकर दु:शासन बैठ गया थककर–हारकर।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

दूसरों की बात छोड़ दीजिये–वैसे सब यह है कि कन्हाई के लिए कोई दूसरा है नहीं सब उसके अपने ही हैं। दूसरा–परपक्ष वह, जो अपने को पराया माने, किन्तु कह यह रहा हूँ इसके ब्रज की बात।

नन्दबाबा को अजगर ने पकड़ा। वह महासर्प बाबा के पैर निगलने लगा और कमरतक उन्हें निगल गया। सब गोप जागे। सबने जलती लकड़ियों से खूब–खूब पीटना प्रारम्भ किया सर्पको। बड़ा हल्ला–गुल्ला मचा, किन्तु कृष्ण खुर्राटे लेकर सो रहा। इसकी नींद तब टूटी, जब बाबा ने पुकारा की 'कृष्ण! कृष्ण! मुझे सर्प निगले जा रहा है। इससे जल्दी बचा।'

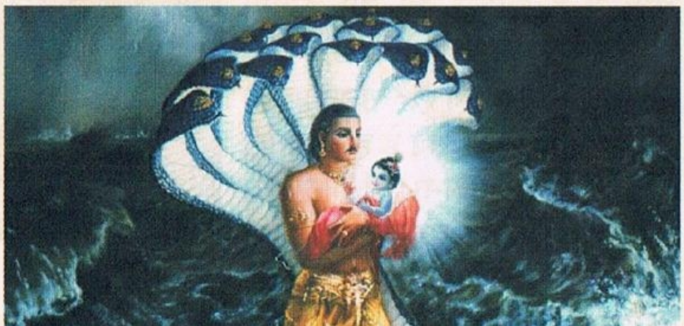

दूसरी बार बाबा यमुना में स्नान करने उतरे तो उन्हें वरूण का सेवक पकड़ ही ले गया। यमुना में गोप कूदे और उन्होंने पुकारा–कृष्ण! दौड़ लाला, ब्रजराज डूब गये।

वन में दावाग्नि लगी। गायें, गोपबालक–सब घिर गये। कन्हाई भी उनके मध्य ही था और सो नहीं रहा था, किन्तु कुछ करना चाहिये, गायों और सखाओं को बचाना चाहिये, यह उसे तब स्मरण आया–जब दावानल समीप आ गया और सखा भयत्रस्त पुकार उठे–'श्याम! हम तेरे हैं। यह दावाग्नि हमें भस्म करने आ रही है। हमारी रक्षा कर।'

यह कन्हाई अग्निपायी है। दावाग्नि पी लेना इसके लिए कोई बात नहीं है। यह भी तो लेता है भव–दावानल, किन्तु जब कोई कहे, कोई पुकारे। ब्रज के सब लोग उस दिन कालियदह के किनारे ही सो गये थे। सब थे–पूरा ब्रज था वहाँ। रात्रि में दावाग्नि लगी और बढ़ी, सब जागे, किन्तु यह अग्निपायी तब जागा, जब सबने पुकार लगायी–'कृष्ण! श्यामसुन्दर! यह दावानल बढ़ता आ रहा है। इससे हमारी रक्षा कर।'

गोपियाँ—प्रेम की ध्वजा गोपियाँ। वे रात्रि में बन में गयी थी कुछ अपने कार्य से इस भुवनमोहन की मोहिनी ने ही उन्हें खींचा था। वे इसके लिए गयी थी और इसके साथ ही क्रीड़ा कर रही थी। श्याम अकेला भी नहीं था। इसके अग्रज भी थे साथ ही, किन्तु जैसा छोटा भाई, वैसा बड़ा भाई। शंखचूड़ यक्ष ने गोपियों को पकड़ा—बलपूर्वक उठाया और भाग चला। दोनों भाई ऐसे—मानो कुछ देखते ही नहीं। दोनों दौड़े और पूरे शालवृक्ष उखाड़कर दौड़े, किन्तु कब? जब गोपियों ने पुकार की— 'हे अमित विक्रम राम! हे कृष्ण! रक्षा करो।'

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

सदा तो कोई पुकारने की स्थिति में नहीं रहता। ऐसा होता है—ऐसे अवसर आते हैं कि विपत्ति अचिन्तित, अकस्मात् आती है और ऐसे आती है कि हमको सोचने, समझने, पुकारने का अवसर ही नहीं देती। निद्रा में छत टूट गिरे या कुछ और हो जाय—आप कैसे पुकारेंगे किसी को?

कन्हाई को आपने इतना अज्ञ समझ लिया है पुकारने की स्थिति न हो और कोई न पुकारे तो कन्हाई उसकी और ध्यान नहीं देता, यह इसका स्वभाव है। यह भी इसका स्वभाव है कि सृष्टि में प्रलय हो या और कुछ, इसके नेत्र नहीं उठते, किन्तु इसके जनपर संकट आये और वह पुकारने की स्थिति में नहीं हो, श्याम स्वत: सतर्क रहता है। इससे ऐसे अवसर पर प्रमाद नहीं हुआ करता।

गोपकुमारों ने अघासुर के मुख को कोई रमणीय गुफा समझा। एक बार उनमें से एक ने कहा भी—'मित्रो! कहीं यह अजगर ही हुआ तो? हम इसके मुख में जायँ और यह हमें खा ले?'

सब हंस पड़े—'अयं तथा चेद् बकवद् विनङक्ष्यति।'

'कन्हाई कहीं चला गया है? यह हमें निगलने लगेगा तो बकासुर के समान श्याम इसे भी चीर फेंकेगा।'

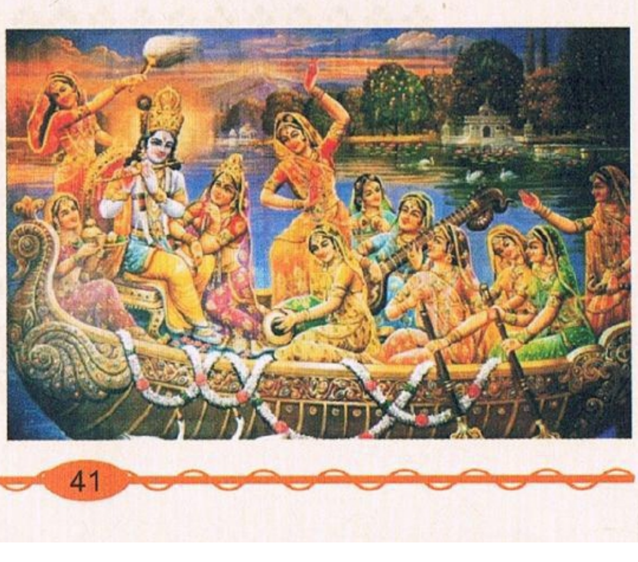

सब चले गये अघासुर के मुख में और जाते ही मूर्च्छित हो गये। अब पुकारे कौन? किन्तु पुकार की आवश्यकता? जिसके भरोसे निर्भय घुस गये थे, वह कही अपने आश्रय को अविश्वस्त कर सकता है।

इन बालकों और गायों ने भी कालियादह का विषैला जल पी लिया था और तत्काल निष्प्राण होकर गिर

पड़े थे। सब बहुत प्यासे थे। कन्हाई पीछे छूट गया है, इस ओर भी किसी का ध्यान नहीं गया था। न स्मरण–न पुकार। मृत पड़े थे सब कालियादह के तटपर, किन्तु थे तो सब इस ब्रजराजकुमार के। वह बढ़ आया स्वयं और उसकी दृष्टि ही तो जड़ प्रकृति को जीवन देती है।

कन्हाई का स्वभाव–जो उसके हैं, उनको भूलता नहीं। एक क्षण को भी उनकी ओर से उदासीन होना इसे नहीं आता। किन्तु यह नटखट रूठता है, जब इसे पुकारने का अवसर हो और कोई न पुकारे। पुकारने योग्य स्थिति न हो तो स्वजन के मस्तक पर इसके अभय कर तो हैं ही, किन्तु जो कन्हाई के नहीं हो गये हैं–उनका काम पुकारे बिना नहीं होगा। पुकार तो किसी की कभी इसने अनसुनी नहीं की।

(८)

अधूरा कुछ नहीं लेता कन्हाई। यह इसका स्वाभाव है कि लेगा तो पूरा लेगा और नहीं तो लेगा ही नहीं। आप इसे आधा चित्त, आधी बुद्धि देना चाहते हैं? लाख प्रयत्न कर लीजिये–मुख फुलाकर, पीठ फेरकर रूठे बैठा रहेगा। देखेगा भी नहीं। न आधा, न तीन चौथाई–देना है तो पूरा दीजिए। इसने स्पष्ट कह रक्खा है–

'मय्येव मन आधत्सव मयि बुद्धि निवेशय।'

'मन मुझ में रख दो! बुद्धि को मुझ में प्रविष्ट करो!' इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजी को कहना पड़ा–

'जरउ सो संपति सदनसुख सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहस सहाई।।'

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

'जरि जाहु सो जीवन जानकिनाथ,
जिये जग में तुम्हारी बिनु ह्वै।'

'जो श्रीराम के चरणों के सम्मुख होने में सहर्ष सहायता न करें–विरोध की बात तो बहुत देर, जो बेमन से सहायता करें, उन सम्पत्ति, गृहसुख, सुहृद–सम्बंधी, माता–पिता, भाइयों को और उस अपने जीवन को भी, जो तुम्हारा नहीं हो गया, जलने दो! आग लगे उनमें।'

संसार का सुख सम्मान भी और कन्हाई का प्रेम भी? यह नहीं होने का है। माता–पिता, भाई, स्त्री–पुत्र, घर–परिवार, शरीर की आसक्ति भी बनी रहे, आप इनकी सुरक्षा, श्रीवृद्धि

के लिए भी चिन्तित रहें और बाबा नन्दका लाड़ला भी आपका हो जाय, यह हो नहीं सकता।

कन्हाई आपका–सदा सदा का आपका ही है। सत्य यही है कि वनमाली मयूरमुकुटी के अतिरिक्त कोई आप–का नहीं; किन्तु आपने ही तो इसे रूठने को विवश किया है। आप इसके हैं क्या?पूर्णत: इसके हैं आप, तो यह आपका और इसके अतिरिक्त भी कोई, कुछ आपका है तो–व्रजराजकुमार के स्वभाव में अधूरा अर्पण स्वीकार करना नहीं है। बड़ा लज्जालु है यह। आपके समीप आपके हृदय में कोई कुछ और होगा तो यह वहाँ नहीं आयेगा। यह लेगा–स्वीकार करेगा तो पूरा हृदय–अन्यथा बिल्कुल नहीं

जीवन का सम्पूर्ण समर्पण–इससे तनिक भी कम श्रीकृष्ण को स्वीकार नहीं है। आपने इस पर कभी विचार किया है? आप अनन्त को पाना चाहते हैं, आपके समीप लोटा हो या घड़ा, समुद्र आबेगा उसमें? अनन्त समुद्र की प्राप्ति का एक ही उपाय है–आप पूरेके पूरे समुद्र में उतर जाइये। आप समुद्र के और समुद्र आपका!

एक सज्जन ने कहा–'आप कहते ठीक हैं; किन्तु.....' भाई मेरे! किसने कहा आपसे कि आप कन्हाई के पीछे पड़ें? लोग कहते हैं और जन्म–जन्म के आपके संस्कार समर्थन करते हैं कि लोक मर्यादा, लोक–सम्मान का ध्यान रखना चाहिए। अपने तथा अपने आश्रितों के पालन–पोषण, रक्षण, वर्धन का प्रयत्न करना चाहिये। धन, यश, पदकी रक्षा–प्राप्ति से उदासीन नहीं होना चाहिए। चाहिये! चाहिये! चाहिये!–ठीक, सब चाहिए और इसमें आप सावधानी से लगे रहें यह भी चाहिए– अब कृपा करके व्रजेन्द्रनन्दन और उनका प्रेम चाहिए, यह मत कहिये! क्योंकि यह चाहिए तो, दूसरा सब 'चाहिये' छोड़े बिना उपाय नहीं है। आप एक साथ दो विपरीत दिशाओं में नहीं चल सकते।

अपने सुना है? न सुना हो तो सुनिये कि मस्त मौला संत कबीर क्या कह रहे हैं–

'कबिरा खड़ा बाजार में, लिये लुआठी हाथ।
जो घर फूँके आपना, चलै हमारे साथ।।'

कबीर जलती लकड़ी लेकर खुले बाजार में खड़ा है। जिसे अपना घर फूँकना हो, वह हमारे साथ चले।

अपना घर क्यों फूँकना? इसलिए कि कबीर के साथ चलना है। अपना घर भी बनाये रक्खो और इस प्रेम के पन्थ पर भी चलो, यह बननेवाली बात नहीं है।

लोकमर्यादा, लोक–लीक–किन्तु कभी सोचा आपने कि यह लोक क्या है? मैं अपवाद की बात नहीं करता, सब नियमों में थोड़े अपवाद होते हैं, किन्तु उनसे नियम अनियम नहीं हो

जाते। नियम यह कि यह सब संसार, संसार के समस्त संबंध मायिक हैं। माया किसी को प्रसन्नता से अनुमति देती है कि वह उसके घेरे को नष्ट कर दे?

माता पिता, पति–स्त्री, पुत्र–भाई, परिवार–सम्बन्धी, समाज–किसी ने प्रसन्नता से कभी किसी को श्याम का होने दिया है कि आप अपने लिए ऐसी आशा किये बैठे है।

मीराँ, प्रह्यलाद, ध्रुव–किसी को तिल–तिल तड़पाया गया, किसी को प्रलोभन दिया गया। पीछे उसकी पूजा समाज कर लेता है। लोकने कभी वर्तमान का सम्मान नहीं किया। यह तो भूत को पूजनेवाला है।

माता–पिता कहते हैं–'बच्चा आस्थाहीन है। वह न जप करता, न पूजा। मंदिरों में भी उसकी श्रद्ध नहीं। गुरूजनों का सम्मान नहीं करता। भगवान् का भजन करना चाहिए उसे।'

थोड़े से समझदार माता–पिता ऐसे कहते, चाहते हैं। अन्यथा तो समाज जैसा है–आप जानते ही हैं। किन्तु यदि बच्चा सचमुच भजन–पूजन में लगने लगे तो वही कहते हैं–'इसे समाज का भी तो ध्यान रखना चाहिए!'

'बच्चा उदासीन हो रहा है। वह ठीक–ठिकाने के वस्त्र भी नहीं पहिनता। उसे विवाह करना चाहिए। कुल परम्परा चलानी चाहिये। कुछ कमाना–धमाना चाहिए। लीजिए–उसे पता नहीं क्या–क्या करना चाहिए। एक साथ उसे अनुरक्त और विरक्त दोनों होना चाहिए–है न अद्भुत माँग?

इस प्रकार का तो यह समाज है। समाज के अच्छे, आस्थावन् धार्मिक माता–पिता, सगे सम्बंधी हैं और दूसरी ओर यह नटखट यशोदाकुमार है कि यह कहता है–'सबकी सुननी, माननी हो तो चुपचाप उधर ही लगे रहो। मेरी ओर आने का दमखम हो तो केवल इधर देखो! दूसरी सब ओर से आँख–कान बन्द कर लो। मत सुनो कि दूसरे क्या कहते हैं। मत देखो कि दूसरों का देह का भी क्या होता है। मेरी ओर देखो तो मैं तुम्हारी ओर देखूँगा।'

'अपने उपार्जन का..... भाग मैं अवश्य धर्म में लगा देता हूँ।' एक सेठ जी ने कहा।

'आप धर्मात्म हैं।' मैं और क्या कह सकता था। वे सचमुच उत्तम धर्मात्म हैं। लेकिन कन्हाई धर्म के बन्धन में तो नहीं आता।

'आप को उत्तम लोकों की प्राप्ति होगी।' यह आश्वासन तो उन्हें शास्त्र ने दे रक्खा है; किंतु भगवत्प्राप्ति?

श्याम उपार्जन का अमुक भाग लेकर संतुष्ट होनेवाला नहीं है। इसे तो पूरा उपार्जन चाहिये।

आप श्रीकृष्ण को चाहते हैं?तब अपनी पूरी गद्दी, पूरा जीवन इसके नाम कीजिये! यह इसका कोई भाग लेने नहीं आयेगा?

महाभारत का युद्ध होना था। युद्ध में सहायता के लिये द्वारिकानाथ को आमन्त्रित करने दुर्योधन और अर्जुन साथ साथ ही द्वारिका पहुँचे। दुर्योधन दो क्षण पहिले पहुँच गये; किंतु श्रीकृष्ण शयन कर रहे थे, अतः सिरहाने की ओर वे सिंहासन पर चुपचाप बैठ गये। अर्जुन दो क्षण पीछे पहुँचे और अपने नित्य–सखाके चरणों के समीप पर्यङ्क पर ही बैठे रहे।

निद्रा टूटी। उठे श्रीद्वारिकाधीश। चरणों के समीप बैठे अर्जुन पर दृष्टि पड़ी तो झटपट उठते हुए बोले–'अरे! अर्जुन! कैसे अकस्मात् आये?'

दुर्योधन चौंके। लगा कि बात बिगड़ी। बोल पड़े–'मैं पहिले आया हूँ।'

'ओर, आप!' श्रीकृष्ण ने मुख घुमाकर देखा। दोनों की प्रार्थना सुनी और बोले–'युद्ध में एक ओर मैं अकेला रहूँगा। शस्त्र नहीं लूँगा। दूसरी ओर मेरी सशस्त्र पूरी नारायणी सेना रहेगी किंतु कुरूराज! अर्जुन आपसे छोटे हैं। मैंने पहले इन्हें देखा है। इनको पहले अधिकार है कि ये इन दोनों में जो चाहें चुन लें!'

अर्जुन बड़े उल्लास से कहा–'मैंने तुम्हें लिया।'

दुर्योधन बड़ी आतुरता से बोले–'ठीक है, ठीक है। मैं सेना स्वीकार करता हूँ। आप तो युद्ध में अस्त्र लेकर लड़ेंगे नहीं?

'नहीं, मैं अस्त्र नहीं लूँगा।' श्रीकृष्ण ने आश्वासन दिया। दुर्योधन ने प्रसन्नतापूर्वक विदा ली।

'अर्जुन! तुमने यह क्या किया?' हँसते हुए श्रीकृष्ण बोले। 'तुम्हें युद्ध करना है और उसमें विजय पानी है। द्वारिका की नारायणी सेना का पराक्रम तुम से अविदित नहीं है। उसे विपक्ष में देकर तुमने शस्त्रहीन मुझको क्यों चुना!'

'श्याम! ठगो मत मुझको!' अर्जुन ने दृढ़ स्वर में कहा। 'पाण्डुपुत्र पराजित हों या विजयी। तुमको त्याग कर हमें त्रिभुवन का निष्कण्टक साम्राज्य भी नहीं चाहिये। जो जाता हो, जाय; जो नष्ट होता हो; नष्ट हो; किंतु तुम हमारे रहो। तुमको हम छोड़ नहीं सकते।'

कन्हाई सारथि बना अर्जुन का। जो इसको चाहता है–जो इसके लिये सब उत्सर्ग किये बैठा है, कन्हाई उसका। वह जो बनावे,

कन्हाई वह बनने का प्रस्तुत। वह जो करावे, कृष्ण वह करने को उद्यत। 'आप द्रोणाचार्य से कहिये कि आश्वत्थामा मारा गया?' धर्मराज युधिष्ठिर से श्रीकृष्ण ने कहा।

'श्याम! सत्य तो नहीं है यह। भीमसेन ने तो केवल अश्वत्थामा नामक हाथी को मारा है।' परम धर्मात्मा सत्य के सच्चे पुजारी युधिष्ठिर हिचक गये।

'मैं कहता हूँ–मेरी आज्ञा है कि आप कहिये!' श्रीकृष्ण ने कहा। 'अश्वत्थामा हतो नरो व कुज्जरो वा।' युधिष्ठिर ने यह कहा। कहा जाता है कि युधिष्ठिर का रथ भूमि से दो अंगुल ऊपर रहता था, इस असत्य के छल–वचन के कारण भूमि से लग गया। इस वचन के कारण युधिष्ठिर को स्वर्ग जाकर नरक–दर्शन करना पड़ा।

क्यों ऐसा हुआ? इसलिये कि युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की आज्ञा बिना हिचक और यथावत् स्वीकार नहीं की। युधिष्ठिर को नरक दर्शन करा लेते यमराज–साहस था उनमें?

श्रीकृष्ण ने कहा अर्जुन से युद्धरम्भ में ही–

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः।।

यह धर्म और यह अधर्म! इस धर्म से यह होगा–इस अधर्म से यह! व्यर्थ की चिन्ता है यह सब! धर्म का फल है स्वर्ग। आपको स्वर्ग चाहिये या श्रीकृष्ण–प्रेम! कन्हाई कहता है 'सब धर्मो को–सब धर्मो के आश्रय को–इस धर्माचरण से यह होगा, इस धर्माचरण के न करने से यह दोष होगा–इन सबको छोड़ दो! मत चिन्ता करो इनकी। केवल मेरी शरण लो! मेरे आश्रय को ग्रहण करो! डरो मत! शोक मत करो! सब पापों से तुम्हें मैं छुड़ा दूँगा।'

भय किसका? धन–धर्म अर्थात् कायिक सुख–समृद्धि, सुयश–सम्मान का? परलोक की बात मैं नहीं करता। आप भी नहीं करते! आज कदाचित् ही कुछ थोड़े लोग हों जो स्वर्ग की चिन्ता करते हों और नरक का भय? कन्हाई को अपनाने जो चलते हैं उनको नरक से भय होगा?

'सरगनरक अपबरग समाना।
जहँ तहँ दीख धरे धनुबाना।'

है यह कायिक सुख–समृद्धि और सम्मान का मोह ही–नाम आप इसे कर्तव्य दे लें या और कुछ भव्य नाम देने से तो तथ्य बदलेगा नहीं। श्याम का प्रेम और मोह साथ नहीं रह सकते।

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहुँ कि रहि सकहि, रबि–रजनी इक ठाक।।

एक सज्जन ने कहा –सत्संग, कथा, कीर्तनादि से दूर ही रहना चाहिये। आजकल इसके बहाने ठगनेवाले बहुत हो गये हैं।'

मैंने पूछा–'ठगनेवाले क्या ठगते या ठग सकते हैं?'

उनका कहना था–'धन और धर्म तक भी।'

पहली बात–धर्मनिष्ठ का धर्म ठगे जाने की वस्तु है? उसे कोई ठग सकता है?

धर्म क्या–यह भी समझा है आपने या रूढ़ मान्यता में मात्र धर्म हैं? आचारनिष्ठ का धर्म आचार और भक्तका धर्म भगवत्प्रेम! इस प्रेम को कोई ठग सकता है?

'सर्वधर्मान्! परित्यज्य' इसका अर्थ क्या आपने यह माना है कि 'सर्वार्थान् सुसंरक्ष्य?'

'लोकेऽपि तावदेव' केवल वैदिक मर्यादा में ही नहीं–लौकिक व्यवहार में भी उतना ही पालन–यहाँ भी यही आदर्श–

तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता च।

जिसे आप त्यागने चले हैं, जिससे आपको उदासीन होना है, उसे कोई ले ले। कोई उसका उपयोग कर ले–आपको दु:ख क्यों? शौचालय में आप मल त्याग आये, कभी चिन्ता करते हैं कि उस मल का कौन क्या करता है? धन–सम्बन्ध, प्रतिष्ठा के प्रति इतना निरपेक्ष होना तो बहुत कठिन है।'

ठीक कहते हैं आप। इसीलिये कन्हाई को अपना बना लेना भी बहुत कठिन है। यह श्रीव्रजेन्द्र का इकलौता कुमार बहुत हठी है। बहुत बिगड़ा स्वभाव है इसका। यह कुछ थोड़ा लेना जानता नहीं। इसे तो सम्पूर्ण लेना और फिर अपने को सम्पूर्ण देना ही आता है।

आपका सम्पूर्ण कितना है, कैसा है–यह प्रश्न नहीं है। आप सम्राट् हैं तो पूरा साम्राज्य और कंगाल हैं तो फूटे पात्र की पूरी पूँजी–लेगा यह जो आपके पास है, वह पूरा। अच्छा बुरा, भरा खाली जैसा हृदय है, पूरा लेगा यह। इसे पूरा ही पाया जा सकता है और उसका यही मार्ग है।

(9)

असुरोत्तम वृत्र ने श्याम का स्वभाव ठीक पहिचाना था। युद्धभूमि में छिन्नबाहु असुर वृत्र इसी से अपने को मारने के लिए उद्यत वज्रपाणि इन्द्रकी सम्मुख देखकर उनसे निर्भय स्वर में कहता है–

त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्–पतिर्विधत्ते पुरूषस्य शक्र।
ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो, यो दुर्लभोऽकिंचनगोचरोऽन्यैः।।

(श्रीमद्भा. 6/11/23)

'इन्द्र! मेरे स्वामी अकिंचन–गोचर हैं। जिन्होंने अपना 'स्व' कुछ भी बना रक्खा है, उनको मेरे स्वामी की कृपा नहीं दीख सकती। तुम जानते हो–मेरे नाथ कैसे कृपा करते हैं? वे अपने जनों के अर्थ, धर्म, काम की प्राप्ति के प्रयत्न को नष्ट कर देते हैं। इस त्रिवर्ग–प्राप्ति के प्रयत्न के विनाश से भगवत्कृपा का अनुमान हो जाता है।'

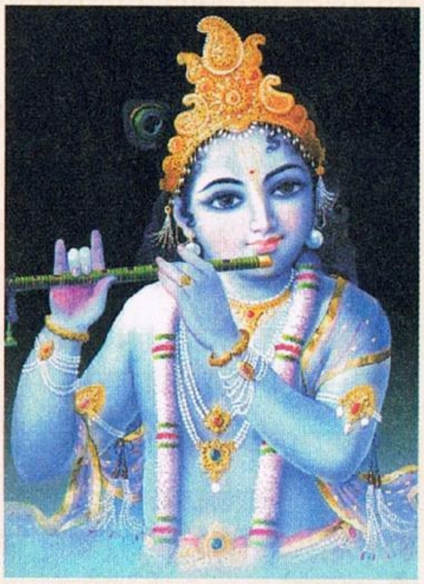

श्रीकृष्ण का स्वजन जब भटकता है, जब अपने परम प्रेमास्पद से दूर होता है, जब जन्म–जन्म के संस्कार उसे दुर्बल करते हैं, माया का चाकचिक्य उसे मोहित करता है, तब मोहन की माधुरी के स्थान पर उसे धन, भोग, या धर्म–स्वर्ग अथवा यश–कीर्ति प्रिय लगते हैं और इनकी प्राप्ति के लिए वह प्रयास करता है।

श्रीकृष्ण तो अपनाकर त्यागना जानता नहीं! एक बार जब इसे आपने अपना बना लिया, अब आप चाहें तो भी यह आपको अपने से दूर जाने देने से रहा। बड़ा नटखट, बड़ा चपल है यह मैया यशोदा का कुमार। आप प्रयत्न करते हैं धन पाने के लिये, भोग जुटाने के लिये अथवा स्वर्ग–यश आदि के लिये कोई धर्मानुष्ठान करते हैं और आपके प्रयास को इसके अदृश्य करकमल असफल कर देते हैं। आपका श्रम, आपकी सावधानी, आपकी निपुणता, आपके सहायक एवं उपकरण–जब कन्हाई किसी प्रयास को असफल करने पर उतारू है तो यह सब क्या अर्थ रखता है।

श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है–

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।

(श्रीमद्भा. 10/88/8)

'जिसपर मैं कृपालु होता हूँ–उसका धन धीरे से चुरा लेता हूँ।' आप केवल माखनचोर या चित्त चोर ही नहीं हैं–अर्थ चोर भी हैं, इसे समझ लेना चाहिये। 'शनैः' पता भी नहीं लगता कि यह आर्थिक हानि क्यों हुई–क्यों हो रही है और हो जाती है। यह धन की चोरी आप करते हैं–कृपा परवश होकर। जब कृपालु ही हुए हैं तो अधूरे क्यों हों? धन चुरा लिया, धन के लिए किये जानेवाले प्रयत्न निष्फल–नष्ट करते चले गये। दुखी होकर–कंगाल जानकर स्वजनों, इष्ट–मित्रों ने तिरस्कृत कर दिया। अब रहा क्या? हारे को हरिनाम।'

जब व्यक्ति सर्वत्र से निराश हो जायगा, उसके प्रयत्न सफल नहीं होंगे, कोई संसार में सहायक–स्वजन नहीं दीखेगा तब विवश होकर वह इसको पुकारेगा, उसे क्या पता कि यह

उसे अपना बनाने को उतावला हो रहा है और उसकी सब असफलता इसी के करों की करतूत है।

ऐसा नहीं है कि कन्हाई सबको कंगाल ही बनाता है या उसके जन दर–दर की ठोकर खाते, भोगविवर्जित एवं लोकतिरस्कृत ही होते हैं। श्याम को सुख मिलता है स्वजनों को सुख, सम्मान, सुविधा देकर। महाराज युधिष्ठिर को राजसूययज्ञ कराके सम्राट बनाया श्रीकृष्ण ने। दुर्योधन की समस्त कुटिलताओं को ध्वस्त करके पाण्डवों को महाभारत युद्ध में विजयी बनाया श्याम ने।

सुदामा को कंगाल से कुबेरादिक वैभव सम्पन्न किसने किया? किसने भीष्म को धर्म के परम मर्मज्ञ के रूप में लोक प्रख्यात किया। उग्रसेन को सम्राट् बनानेवाला कौन?

सुग्रीव और विभीषण को सिंहासन मिलता, यदि श्री रघुनाथ कृपा न करते?

ध्रुव को ध्रुवपद और प्रह्यलाद को दैत्येश्वर बनाकर लोक सम्मानित करने का श्रेय किसे हैं? बलि पर भगवान् वामन कृपा न करते–कौन जानता उन्हें? वे इन्द्र बने भी रहते, कितने लोग जानते हैं वर्तमान इन्द्र का नाम? पता नहीं कितने इन्द्र हुए–गये–उनको कोई क्यों स्मरण करें?

विदुर, हनुमान की बात छोड़िये–गृध, गणिकादि को जो लोग–सुयश मिला है, किसका अनुग्रह है यह?

श्रीपति के पंकजों को छोड़कर भी कहीं लक्ष्मी स्थिर रह सकती है? अर्थ और काम तो श्री देवी का अनुग्रह ही है या और कुछ कन्हाई की कृपादृष्टि के बिना यह अनुग्रह सचमुच मिलता है किसी को?

आप धर्म की पूछते है?

'धर्मस्य प्रभुरच्युत:।'

यह अच्युत ही धर्म का स्वामी हे। इसको त्यागकर रहनेवाला धर्म तो अधर्म है।
अब आप कहेंगे–'परस्पर विपरीत बात मत कहिये!'

किंतु परस्पर विपरीत बात मैंने कही नहीं है। वैसे कन्हाई है ही त्रिभंग–टेढ़ा! इसकी अटपटी चाल कुछ कठिनाई से समझ में आती है।

'त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरूषस्य।'

वृत्र असुर सही, किन्तु महाभागवत है। उसकी बात बहुत महत्त्व की, बहुत पते की है।

'पुरुषस्य–निजजनस्य' जो श्याम के अपने स्वजन हैं, केवल उनके सम्बंध की यह बात है। दूसरों को अपना प्रारब्ध भोगना चाहिये। कृष्ण को उनके संबंध में टाँग अड़ाने का अवकाश नहीं। कोई अभिरूचि उसकी उन लोगों में नहीं, जो उससे तटस्थ है।

आयासविघातं विधत्ते' मनुष्य आयास–परिश्रम क्या बिना, आसक्ति के करता है? जब त्रिवर्ग में–अर्थ, धर्म, काम में कहीं आसक्ति होगी, किसी को पाने की तृष्णा होगी; तभी तो उसकी प्राप्ति के लिए प्रयास होगा। यह कोई भली बात है कि कोई ब्रजेन्द्रनन्दन का अपना जन होकर भी अन्यत्र चित्त को आसक्त बनावे। इस त्रिभुवन सुन्दर आनन्द कन्द को छोड़कर भी क्या और कुछ स्पृहणीय है?

किया क्या जाए? मन दुर्बल है। जन्म–जन्मान्तर के संस्कार पड़े हैं चित्त में। इन संस्कारों से विवश प्राणी अनेक बार भटक जाता है। माया अत्यन्त प्रबल है। उसके प्रलोभनों में बड़े–बड़े

पड़ जाते हैं। अत: अर्थ, काम, धर्म की स्पृहा जाग जाती है। अनेक बार बुद्धि भ्रम में पड़ जाती है। व्यक्ति अपनी दुर्बलता से या भ्रांतिवश त्रिवर्ग की स्पृहा करने लगता है। उसे पाने का प्रयास करने लगता है।

स्वजन दुर्बलता के ग्रास बन जायँ, भ्रान्त हो जायँ, तो क्या श्याम भी प्रमाद करने लगे? व्रजराज के कुमार को प्रमाद स्पर्श नहीं करता। वह अपने जनों को भटकता देखता है तो अधिक सतर्क हो जाता है। वह उनके प्रयास को नष्ट कर देता है। उन्हें अपने से दूर नहीं जाने देता।

कन्हाई धन–वैभव, सृष्टि के समस्त भोग का परमाधिष्ठान है और धर्म का स्वामी है। श्रीव्रजराज का लाल न कृपण है, न असूयु। उदारचक्र–चूड़ामणि है मोहन और इतना है, इसीलिये वह अपने जनों के अर्थ, धर्म, काम की प्रप्ति के प्रयास नष्ट कर देता है। जो देने में समर्थ है, नष्ट करने का उसी को अधिकार है।

आपने बड़ी सावधानी से, बहुत चतुर सहायकों को लेकर व्यापार किया। बहुत उपयुक्त समय में। दूसरे सब आपके सहकर्मी लाभ में और आपको घाटा लगा। यह कृपा हुई आप पर–आपको श्याम ने स्वजन माना।

आपने सविधि अनुष्ठान किया। पूरा जप–पुरश्चरण सम्पन्न हुआ। मन्त्र, विधि, श्रद्धा में कहीं कोई त्रुटि नहीं। हवन–तर्पणादि सब सम्पूर्ण, किंतु मन्त्रदेवता करे क्या? वह अन्तत: सर्वसमर्थ से बलवान् तो नहीं है। सर्वेश्वर जब उसे डाँट दे–'चुप बैठो!' अब आपके अनुष्ठान की सफलता मंत्र देवता दे तो कैसे?

आपको ज्योतिषियों ने बहुत यश, बहुत भोग–सम्पन्न होना बतलाया था। ज्योतिषशास्त्र झूठा नहीं है; किंतु ज्योतिष आपके प्रारब्ध को ही तो बतलायेगा। यह जो 'कर्तु मकर्तु मन्यथाकर्तु समर्थ; चिर चपल है, इसपर तो कोई अंकुश लगाने में समर्थ नहीं? यह आपके प्रारब्ध को एक ओर पटकता जा रहा है–इसकी कोई दवा किसी के समीप कहाँ है? भक्त का कोई प्रारब्ध नहीं होता। श्रीकृष्ण को जिस दिन आपने 'अपना' कहा, प्रारब्ध–कर्मदेवता उसी दिन आपको हाथ जोड़ चुके। अब तो यह नटखट जो करे, जो चाहे–वह विधान आपके लिये।

यह ऐसा क्यों करता है? कृपा–परवश होकर। स्वजनों को अपने से दूर होते देखकर इससे रहा नही जाता। उनको अपनी ओर खींचना इसका स्वभाव है।

परमविरक्त देवर्षि नारद ; किंतु–

मोह न अंध कीन्ह केहि केही।
को जग काम नचाव न जेही।।

देवर्षि विवाह करने को उद्यत हो गये और वह भी विश्वमोहनी से! उन्होंने उस कन्या का हाथ देखा तो उसके लक्षण दीखे–

यहि जो बरै अजय सो होई।
समर भूमि तेहि जीत न कोई।।

'अहो मोहमहिमा बलवाना।; अन्यया नारदजी को क्या सुर–असुर सबसे युद्ध करके त्रिलोक विजयी होना अभीष्ट था? वे अजर–अमर तो हैं ही। विश्वमोहिनी में ऐसा कोई भी तो गुण नहीं था जो उनके लिये दुर्लभ हो या उन्हें अभीष्ट हो। किन्तु लीलामय की लीला।

देवर्षि ने एक श्लाघ्य कर्म इस अवस्था में भी किया। उन्होंने दूसरा कोई उपाय न अपनाकर भगवान् को ही पुकारा। उनका भक्त–स्वरूप है यह। वे और कुछ करते तो भी वह प्रयास सफल नहीं होना था ; किंतु तब वह भक्ति का कलंक होता।

मोर दास कहाइ नर आसा।
करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा।।

'हम दुर्बल हैं– हमारे मन में धन की, भोग की यश की स्पृहा है; किंतु लेंगे हम तुम्हीं से। तुम दो या मत दो–हम अन्य से माँगगे नहीं। अन्यत्र जायँगे नहीं। तुम्हें–केवल तुम्हें पुकारेंगे।'

भक्त का यही स्वाभव–यही स्वरूप है। देवर्षि ने किया यही। उनका निश्चय इस मोहग्रस्त अवस्था में भी अविचल है–

मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ।

भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने स्पष्ट कह दिया–

कुपथ माग रूप ब्याकुल रोगी।
बैद न देह सुनहु मुनि जोगी।।

रोगाक्रान्त व्यक्ति कुपथ्य मांगेगा तो चिकित्सक उसे कुपथ्य दे देगा? अबोध शिशु सर्प,

अग्नि था विष उठाने को मचलेगा तो माता उसको वह उठाने देगी?

तब क्या श्रीकृष्ण किसी को धन–वैभव, सुख–भोग, पद प्रतिष्ठा देते नहीं हैं? देते तो हैं, क्यों देते हैं? क्यों दिया उन्होंने?

कन्हाई देता है–दिया है इसने और देता है तो अल्प देना इसे आता नहीं। भरपूर देता है। क्यों देता है–यह मत पूछिये। किसे देता है, यह पूछिये।

किसे देता है?

जिसे धन में, धर्म में, भोग में कोई रस–कोई रूचि, कोई आसक्ति नहीं है। जो अर्थ, धर्म, काम को पाकर भी उनमें बँधता नहीं। जो इनको श्याम का प्रसाद समझकर ग्रहण करता है। इनके आने में जिसे हर्ष और जाने में जिसे विषाद नहीं होता।

मिथिलायां दहृमानायां न मे दह्यति किचन।

सारी मिथिलापुरी के जल जाने पर भी मेरा तो कुछ नहीं जल रहा है। – यह क्षमता जिसमें है– उसे श्याम राज्य देता है।

चिकित्सक बादाम या पिश्ते का सेवन किसे बतलायेगा? किसे वह गरिष्ठपाक देगा? जिसमें उसे पचाने की क्षमता हो। जिसे ये गुरूपाक वस्तुएँ रोगी न करके शक्ति दे सकें।

श्याम का स्वभाव अपने स्वजनों को नित्य संरक्षणा देना है। अधिक प्राणी दुर्बल हैं–मानसिक दृष्टि से रोगी हैं। इसलिये इसे ब्रजराजकुमार को उन सबके प्रति अधिक सावधान रहना पड़ता है। ये रोगी सदा कुपथ्य की प्राप्ति–का प्रयास करते हैं। कभी इधर हाथ बढ़ाते हैं; कभी उधर। कभी एक से कुछ माँगते हैं, कभी दूसरे से। ये देवता–देवी,

यज्ञ–अनुष्ठान अथवा लौकिक प्रयास; किंतु कृष्ण असावधान नहीं होता और इसके स्वजनों को कुपत्य अर्पित करने का साहस किसी में है नहीं। रोगी का कुपथ्य प्राप्ति का प्रयास तो उत्तम अभिभावक असफल करता ही रहेगा।

किस कुपथ्य प्रेमी रोगी ने अभिभावक को सदय कहा है? रोगी तो उसे निष्ठुर कहेगा ही। रोगी की बातें, रोगी–की गालियाँ, रोगी का तिरस्कार–यह सब क्या ध्यान देने की बात है?

ये जगत् के मानसिक रोगी। कन्हाई को अपना बनाकर फिर कहते हैं– 'बड़ा क्रूर, बड़ा निष्ठुर।' पता नहीं और क्या–क्या! अनन्त करूणार्णव कृष्णचन्द्र कहाँ सुनता है–कहाँ ध्यान देता है इनकी चेष्टाओं एवं शब्दों पर। इसे तो अपनो से सहज स्नेह है।

श्याम का स्वभाव–अपने जनों के स्खलन में सदा उनकी रक्षा करते रहना। अत: अब अपनों के त्रिवर्ग–प्राप्ति के प्रयास को विफल करने का स्वभाव बनाये बैठा है। इसका यह स्वभाव इससे महान् कोई अभय का आश्वासन पुरूष के लिए हो सकता है।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

माखनप्रेमी नन्दलाल–लेकिन पूछिये तो इसका सबसे प्रिय आहार है– 'अपनों का अभिमान।' यह हरि 'गर्वहारी है।

'तात राम कर सहज सुभाऊ।
जन अभिमान न राखहिं काऊ।।

देवर्षि नारद को अभिमान हुआ–'मैंने काम को जीत लिया।'

'जिता काम अहमिति मन माही।'

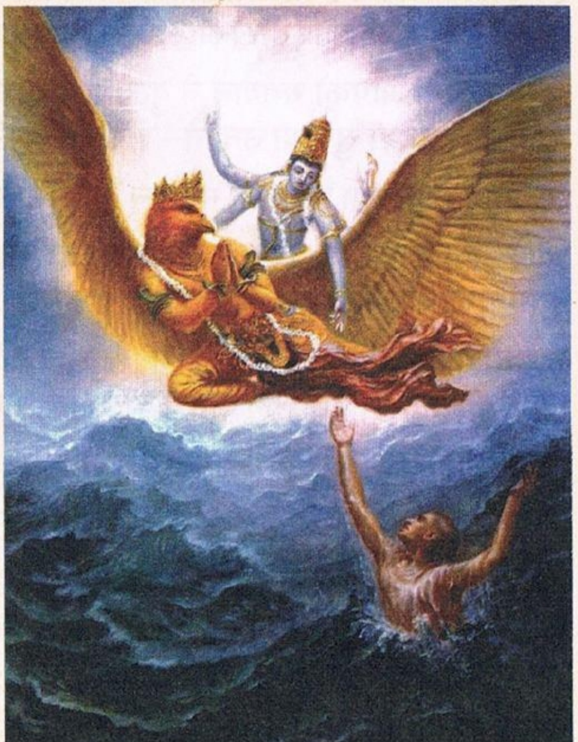

परिणाम यह हुआ कि विश्वमोहिनी से विवाह करने को उताबले हो गये। यह विश्वमोहिनी–न कोई नगर, न नरेश और न कोई विश्वमाहिनी। देवर्षि के मन में जो गर्व उत्पन्न हुआ – गर्वहारी ने उसे दूर करने के लिये यह माया रच डाली।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

'गरूड़जी! हनुमानजी मलयाचल पर हैं उन्हें कहिये कि उनको मैंने स्मरण किया है।' एक दिन सहसा द्वारका धीश ने आज्ञा की। अब गरूड़ को क्या पता कि उनके ये लीलामय क्या करना चाहते हैं।

'प्रचण्डवेगों मधुसूदनासन:।'

भगवान् के वाहन गरूड़–उनके वेग की समता नहीं कहीं। उनको अपने तीव्रतम

वेग का गर्व हो तो उचित गर्व नहीं है यह? किन्तु जिसका आहार ही निजजनों का गर्व है–उसको आप कह भी क्या सकते हैं? उसके विशाल नेत्र इसी खोज में रहते हैं कि कहीं अपनों में कोई अहंकार दीखे और झट हाथ बढ़ाकर वह 'हप्प' कर ले।

'हनुमान्‌जी! आपको भगवान् ने बुलाया है द्वारका में।' गरूड़ को कितने क्षण लगते थे। वे पहुँचे और संदेश सुनाया उन्होंने–'मेरी पीठपर बैठ लीजिये तो झटपट पहुँचा दूँ।'

'भगवान् ने बुलाया है? कौन भगवान्?' हनुमानजी ने पूछ लिया।

'वही नवजलधर सुन्दर!' गरूड़ अन्ततः श्रीहरि के वाहन हैं। वे इतना जानते हैं कि हनुमान्‌जी के आराध्य कौन हैं। भगवान् भी कहीं दो–चार होते हैं?'

'अच्छा, आप चलिये। मैं आ रहा हूँ।' हनुमान जी ने सहज भाव से कहा। भगवान् नारायण के वाहन की पीठ पर बैठने की बात वे कैसे सोच सकते थे!

'आपको बहुत देर लगेगी।' गरूड़ने हठ किया – मैं शीघ्र पहुँचा दूँगा।'

'मैं आपसे पहले पहुँच रहा हूँ। आप चलिये।' हनुमानजी ने हँसकर कहा।

'आप समझते तो हैं नहीं।' गरूड़ झुँझलाये। यह कपि उनसे पहले पहुँचने की बात करता है। 'प्रभु ने बुलाया है। मैं आगे जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा और मेरे वेग को आप पहुँचे सकते नहीं। चलिये–ले चलता हूँ मैं।'

गरुड़ को अपनी शक्ति का भी गर्व कम नहीं है उन्होंने अमृत–हरण के समय समस्त

देवताओं के छक्के छुड़ा दिये हैं। इन्द्र के वज्र से भी उनका कुछ बिगड़ा नहीं! वज्र की अमोघता का सम्मान करने के लिये अपना एक पंख गिरा दिया था उन्होंने स्वेच्छा से। यह बानर उनकी बात ही नहीं सुनता तो इसे बलपूर्वक उठा ले जाना चाहिये।

'मेरे प्रभु भी बड़े विनोदी हैं। उन महाराजाधिराज ने कैसे धृष्ट पक्षी पाल लिया है।' हनुमान्‌जी ने मन में कहा। बलपूर्वक अपने को उठाने आये, गरूड़ को पकड़कर फेंक दिया उन्होंने। गरूड़ दूर द्वारका के समीप के समुद्र में जा गिरे।

उधर द्वारका में गरूड़ को भेजकर द्वारकाधीश ने अपने चक्र को आज्ञा दी–'द्वारपर रहो। कोई अपरिचित भीतर न चला आवे।'

चक्र को भी गर्व था कि उसकी शक्ति का अन्त नहीं है। वह द्वारावरोध करके खड़ा हो गया। श्यामसुन्दर ने सत्यभामाजी से कहा–'मैंने हनुमान्‌जी को बुलाया है। वे मेरे श्रीरामरूप के आराधक हैं। मुझे सिंहासन पर धनुर्धर राधवेन्द्र होकर बैठना है। अतः श्रीजनकतनया के वेश में बैठने के लिये रूक्मिणी को बुला दो। श्रीमैथिली के शील–सौन्दर्य की छाया तुम्हारी बड़ी बहिन में है।'

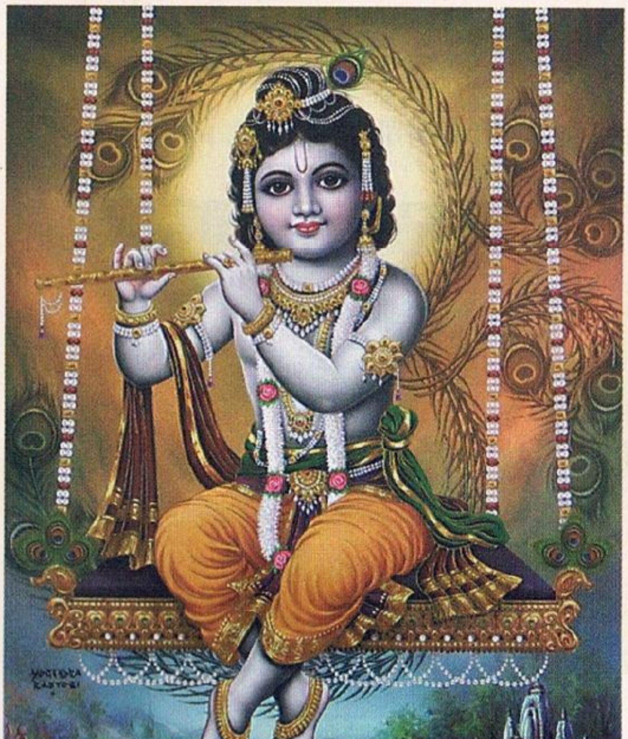

'मैं क्या सौन्दर्य में कम हूँ किसी से?' सत्यभामाजी ने तनिक रूठते स्वर में कहा–'वेश ही थोड़ा परिवर्तित करना है, सो मैं कर लेती हूँ।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा!' श्रीकृष्णचन्द्र मुस्करा कर रह गये। उधर हनुमानजी द्वारका पहुँचे तो चक्र ने द्वार पर रोका–'कौन भीतर जा रहा है?'

'मैं हनुमान्! प्रभु ने बुलाया है मुझे।'

'आज्ञा नहीं है–भीतर जाने की।'

'आप पूछ लीजिये! प्रभु ने ही बुलाया है।'

'मैं द्वार छोड़कर नहीं जाऊँगा। रूके रहो। कोई आयेगा तो उसे पूछने को कह दूँगा।'

'पता नहीं कोई कब आयेगा।' हनुमानजी ने सोचा। चक्र जाने दे नहीं रहा था। उसे उठाकर उन्होंने मुख में रख लिया और भीतर पहुँच गये।

'हनुमान्! आ गये तुम?' दूर्बादलश्याम, धनुर्धर सिंहासनासीन प्रभु के चरणों पर श्रीमारूति ने मस्तक रक्खा तो अत्यन्त स्नेह से उनके सिर पर कमल–कर फेरते वे लीला मय हँसकर पूछने लगे–'तुम्हें द्वारपर किसी ने बाधा तो नहीं दी?'

'यह रोक रहा था मुझे।' मुख में से चक्र को निकालकर सम्मुख करते हुये हनुमान्‌जी बोले–'इसे प्रभु के पास ही लेता चलूँ।'

इतने में समुद्र–जल से सर्वथा भीगे, हाँफते गरूड़ पहुँचे। अपने आराध्य के चरणों में हनुमानजी को बैठे देखा। उन्होंने तो मस्तक झुका लिया।

'गरूड़! तुम्हारी यह दशा? समुद्र स्नान करने लगे थे?' प्रभु ने पूछा।

'आपने! यह पक्षी पाल तो लिया है; किन्तु यह बहुत धृष्ट है। साथ ही बहुत मन्दगति है। यह तो पता नहीं कितनी देर में आ पाता। मैंने इसे पकड़कर द्वारका की ओर फेंक दिया था।' हनुमानजी ने स्वयं ही सुना दिया। तनिक रूककर फिर उन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया–'प्रभु!'

'क्या कहना है?' मुस्कराये लीलामय।

'महारानीजी कहाँ है? आज मैं अपनी माता को क्यों नहीं देख रहा हूँ।' हनुमान्‌जी ने सत्यभामाजी को प्रणाम किया ही नहीं था। अब वे पूछने लगे–'आज यह किस दासी को प्रभु ने इतना सम्मान दे रक्खा है?'

लज्जा से आरक्त मुख सत्यभामाजी स्वयं उठकर चली गयी। उन्होंने स्वयं रूक्मिणीजी को भेजा–'बहिन! तुम्हारा वह बानर बेटा आया है। तुम्हारे अतिरिक्त दूसरी कोई उसे द्वारकेश की महारानी दीखती ही नहीं। शेष सबको तो वह दासी ही समझता है। जाओ, उस पुत्र को सँभालो।'

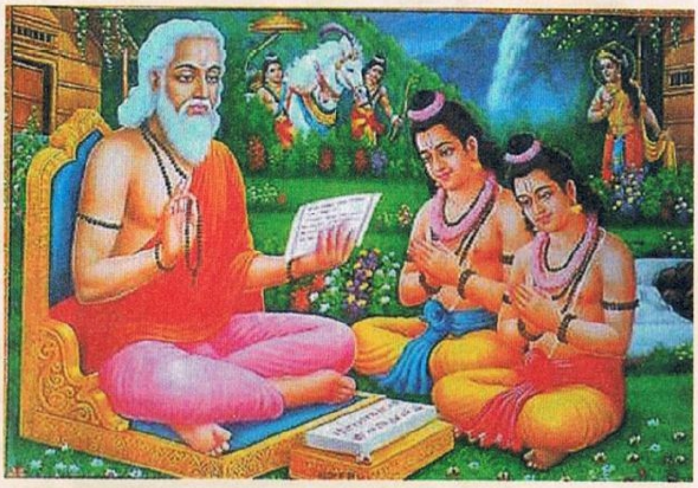

'ओह! हनुमान!' रूक्मिणीजी में जो वात्सल्य जगा तो सत्यभामा के स्वर के आक्रोश पर उनका ध्यान ही नहीं गया। वे जैसे थीं, वैसे ही तीव्रगति से बढ़ गयी।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

आप इस भ्रम में न रहे कि श्याम किसी का कम–से कम हनुमान्‌जी का गर्व तो क्षमा कर ही देगा। अपनों में किसी का गर्व यह क्षमा नहीं करता। स्वजनों का अभिमान सह लेना इसके स्वभाव में नहीं। हनुमान्‌जी को तो त्रेतामें ही यह शिक्षा मिल गयी। एक बार उनके मन में तनिक सा अपने बल का गर्व आया। अन्यथा तो वे नित्य निरभिमानहैं। लंका को भस्म करके, रावण की सेना का गर्व चूर करके वे ऋष्यमूक पर लौटे, तब भी उनका कहना था–

'नाथ न कछु कपि की प्रभुताई।
प्रभु प्रताप जो कालहिं खाई।।

लंका के युद्ध में भी श्रीआंजनेय निरभिमान रहे। अभिमान एक बार आया। श्रीराम के अश्वमेधीय अश्व के रक्षकों में वे थे। वाल्मीकि आश्रम के पास अश्व आया तो श्रीजनक–तनया के लडैतों ने उसे पकड़ कर बाँध लिया। दो छोटे बालक, उनके छोटे–छोटे धनुष–उन्हें युद्ध में सम्मुख देखकर हनुमान्‌जी को लगा–'कुम्भकर्ण और रावण तक मेरा मुष्टिप्रहार नहीं सह सके, मेघनाद–जैसा धुनर्धर भागता था मेरे सामने से, ये बच्चे लड़ेगे मुझसे?'

अपने बल का गर्व आया यहाँ मन में और लव–कुश के धनुष से दिव्य बाण बरसने लगे। अयोध्या की सेना के शूर तो मूर्छित भूमि में बिछे पड़े थे। कुश ने हनुमान् और अंगद को बाण मार–मारकर आकाश में उठा दिया और वहीं शराघात से चक्कर खिलाते रहे। अत्यन्त आहत, व्याकुल करके तब इन्हें नीचे गिराया और फिर बाँध लिया।

कुश के द्वारा बाँधे हनुमान् को बन्धनमुक्त कराया श्रीविदेहनन्दिनी ने। उस दिन सदा–सदा के लिये पवन कुमार का स्वपौरूष–गर्व गल गया।

प्रेम की ध्वजा गोपियाँ–महारास के प्रारम्भ में गर्व उनमें आ गया। वे श्रीव्रजराज–कुमार की वंशीध्वनि सुनकर अपने देह–गेह, स्वजन–स्नेह को भूलकर दौड़ी आयी थी वन–में। श्याम ने उन्हें पहले तो कह दिया–'घर लौट जाओ!'

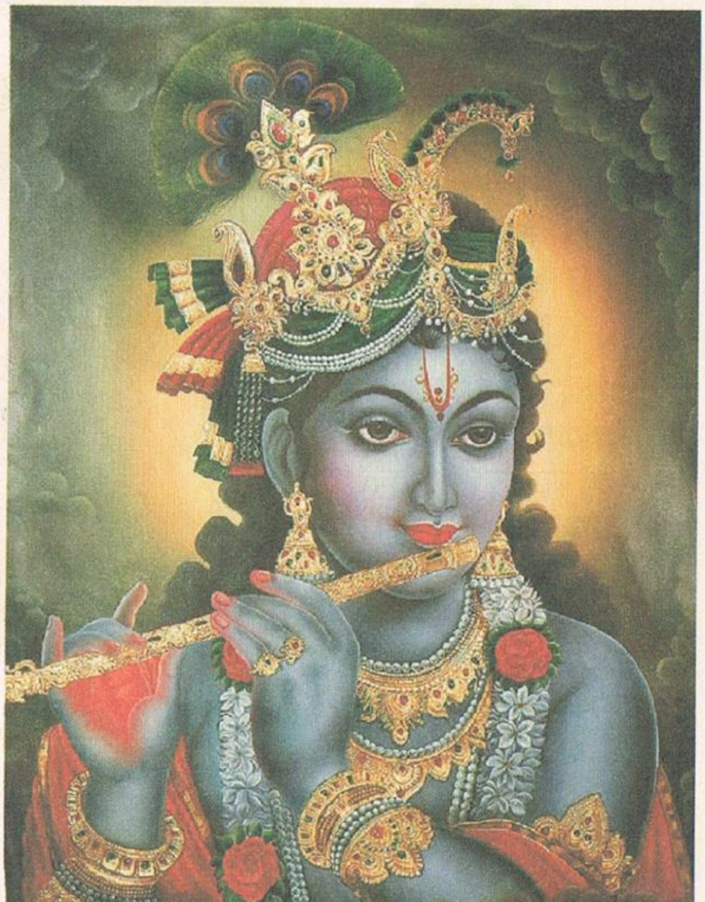

किंतु वे लौट जाने के लिये तो आतुर होकर दौड़ी नहीं आयी। उनका रूदन, उनका दृढ़ अनुरोध–कन्हाई द्रवित हो गया। इसने उनका सम्मन किया।

श्याम का स्वभाव ही है कि अपनायेगा, सम्मान करेगा तो अपने को न्यौछावर कर देगा। कुछ उठा नहीं रखेगा। यह रागी है तो पराकाष्ठा का और विरागी है तो भी पराकाष्ठा का ही। इसने गोपियों का भरपूर सम्मान किया। बस, उनको भ्रम हो गया–उनको लगा कि हम 'इतनी सुन्दरी, इतनी गुणवान् हैं कि मदनमोहन हमपर मुग्ध हो गये हैं।'

तासां तत् सोभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयन।।

(श्रीमद्भागवत 10/29/48)

केशव ने देखा–'इनमें तो अपने सौन्दर्य सौकुमार्य आदि का मद–गर्व आ गया और इस गर्व में ये अब मुझ से रूठने–मान करने लगी।

रूठे को मनाने में मोहन को आनन्द आता है; किन्तु अपने अभिमान के कारण कोई मान करे तो? तब तो श्रीकृष्णचन्द्र उस अभिमान को नष्ट करेगा ही और ऐसा करता है वह 'प्रसादाय' कृपा करके–प्रतिशय कृपापात्र बनाने के लिये। गोपियों का मान नष्ट करने के लिये यह अन्तर्हित हुआ और यह भी उनपर कृपा करने के लिये ही इसने किया।

'अस अभिमान जाइ जनि भोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।'

अभिमान–अभिमान में ही अन्तर है–बहुत बड़ा अन्तर। अपने बल, रूप, गुण, धन, विद्या, बुद्धि, साधन भजन का अभिमान एक बात और उससे सर्वथा भिन्न अभिमान कि सर्वलोकेश्वर, सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ, सकलसद् गुणगणैकधाम हमारा अपना है। उसका बल हमारा बल है। उसका अन्नत ज्ञान हमारा ज्ञान है। उसकी शक्ति हमारी शक्ति है। हम अपराजित–हम अदम्य हैं उनके बलपर। कलि और उसके पाप–ताप, उसके परिवार परिकर किस क्षुद्र गणना में आते हैं। सिर पीटें नरक के अधिदेव और स्वर्ग का इन्द्र दोनों –कन्हाई हमारा है। हमारी ओर देखने का साहस करने की शक्ति नहीं किसी में।

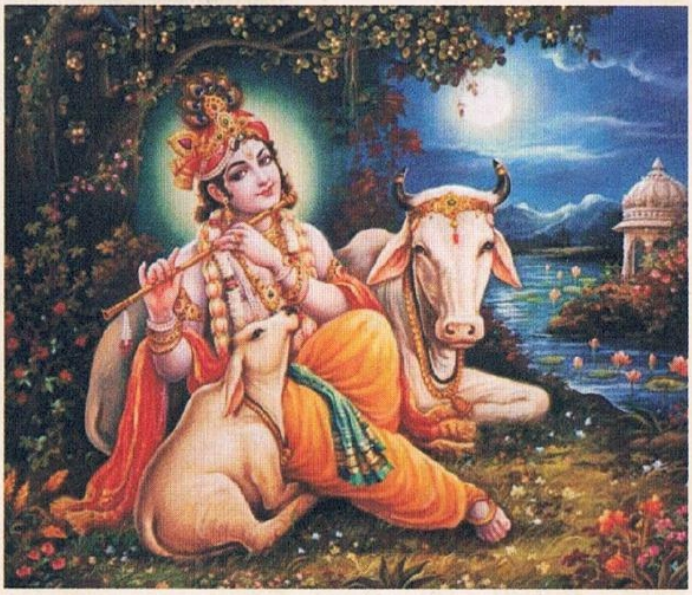

युग–युग में तप करनेवाले महातापस, समाधिसिद्ध योगी, भुवनविख्यात ज्ञानी गिर गये माया के एक नन्हें झटके में। पुराण क्या इसके प्रमाण नहीं है? क्यों हुआ ऐसा? इसलिए कि इस नटखट गोपकुमार को अहंकार किसी का सह्य नहीं। किसी को लगा–'मैं पुराना तपस्वी, योगी ज्ञानी...' बस, इसकी अंगुलियाँ हिलने लगी।

स्वर्ग की अप्सरा आयें, न आयें, निमित्तों की कमी है नन्दलाल के समीप? एक चिड़िया पेड़ पर से बीट कर देगी। सिर पर और तपस्वी के तप को क्रोध निगल जायगा। बाबा नन्द का लड़का अँगुली हिलायेगा तो एक तिनके को किसी लोकपाल से समर्थ बनाकर दिखा देगा।

जनको पन राम न राख्यो कहाँ?'

दूसरी ओर इस ब्रजराज के लाल में एक अद्‌भुत आन है–जो उसके बलपर, उसके सहारे कहीं खड़ा है, उसका मान तो कन्हाई अपने मान से महान् मानता है। उसको पराजित करने की शक्ति त्रिभुवन में नहीं–

'जो मन चरन सकसि सठ टारी।
फिरहिं राम सीता मैं हारी।।'

बालि–तनयने अपने बल पर प्रतिज्ञा की थी यह! रावण के पुत्र और परिकर अंगदा का चरण हिला नहीं सके। स्वयं दशग्रीव उठा–उसपर अंगद व्यंग न भी करते, क्या होता? उनके चरण के साथ जिसका आश्रय था, वह आश्रय कभी डिगा है?

'आजु जौं हरिहि न सस्त्र गहाऊँ।
तौ लाजौं गंगाजननी कौं संतनु सुत न कहाऊँ।।'

भीष्मपितामह ने अपने बल पौरूष के गर्व में यह प्रतिज्ञा की थी? प्रतिज्ञा उसके बलपर की गयी थी जो विपक्ष में अर्जुन के रथपर सारथि बनकर बैठता था और जिसने स्वयं महाभारत के युद्ध में शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा कर रक्खी थी।

यह कोई नवीन अवसर नहीं था। व्रज में आये दिन ऐसे अवसर आते थे और कन्हाई को बचपन का अभ्यास है–ऐसे अवसर पर व्यवहार करने का।

कोई गोपबालक कह देता था–'कनूँ! मैं तुझसे बलवान् हूँ।' श्याम ताली बजाकर कहता–'मैं तुझसे बलवान्। चल, मल्ल–युद्ध कर लें!'

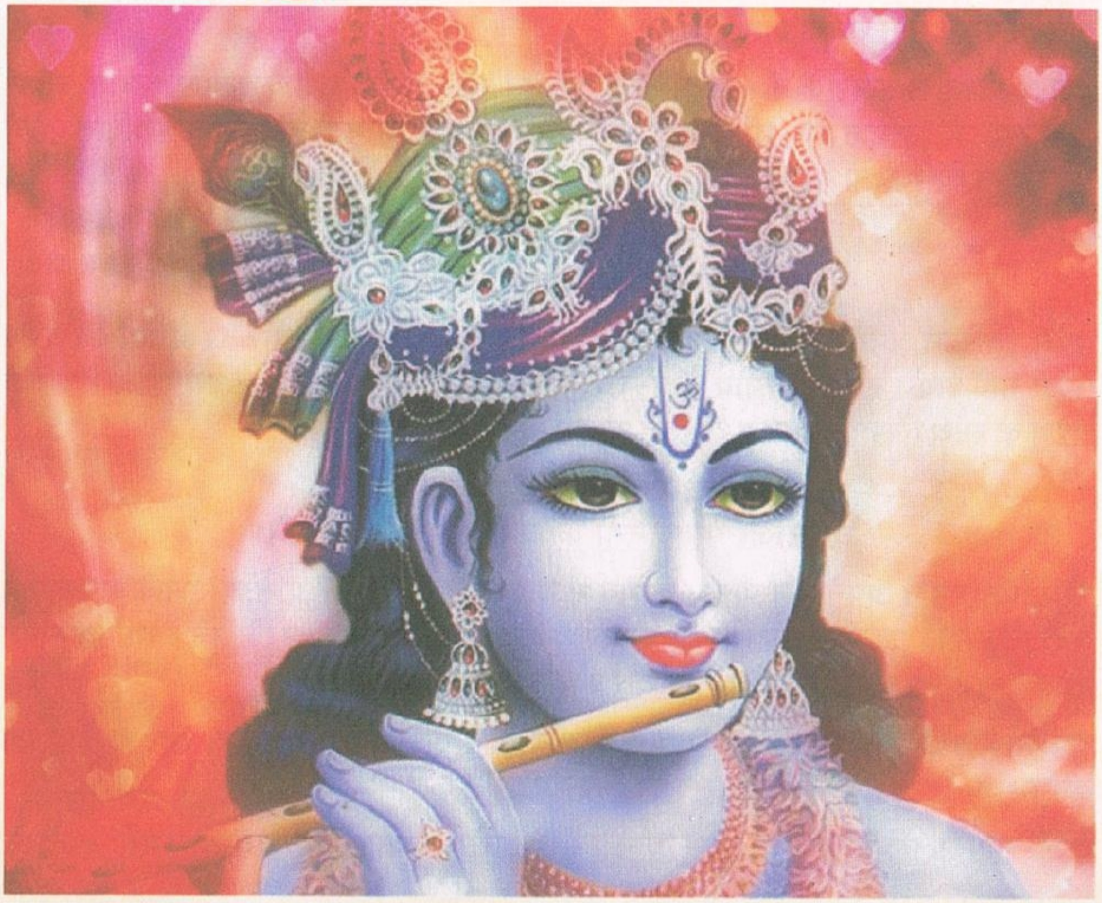

'आ आ! देख तुझे कैसी पटकनी देता हूँ।'
'हाँ—मैं तुझे पटकनी दूँगा।'

आप जानते हैं – किसकी बात रहेगी? कौन किसे पटकनी देगा? मैया यशोदा का सुकुमार लाला ऐसे मल्लयुद्ध में सदा हार जाता है। सखा को विजय मिलनी चाहिये। अखाड़े में विजयश्री लेनी होगी तो मामा कंस के मल्लों को चारों खाने चित्त करके ले लेगा। जो दृढ़ आस्थावान् है– 'कन्हाई मेरा!' उसे पराजित तो कन्हाई स्वयं भी नहीं कर सकता।

प्रतिज्ञा महाभारतयुद्ध में भीष्म की रहनी थी। कृष्ण को अपनों के सम्मुख हार जाने में, अपनी प्रतिज्ञा तोड़ देने में हिचक कहाँ है। यह तो इसीलिये 'रणछोड़राय' बना ही है।

जो अभिमान किसी का—किसी निजजनका अपने बल—गुण—साधन का है, उसे श्याम रहने नहीं दे सकता। इसका स्वभाव है—'जनके गर्व का अपहरण।' किन्तु जो मान, जो गर्व श्याम के सहारे है, कन्हाई के अपनत्व का है—धन्य है वह मान। नित्य अपराजित है वह। उसके पीछे तो श्रीब्रजेन्द्रनन्दन अपना मान, अपनी प्रतिज्ञा भी भंग करने को उद्यत रहता है। दूसरा कौन है जो उसको अफल बना सकता है?

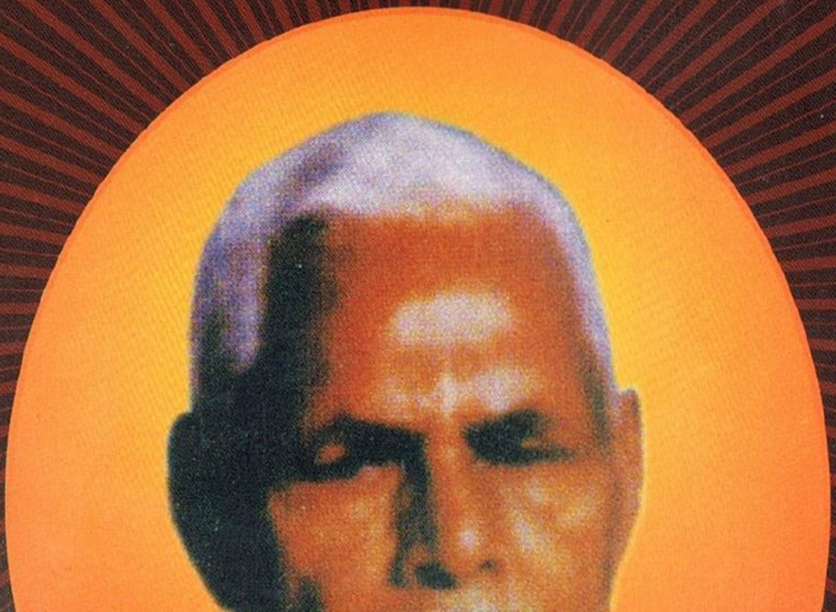

आविर्भाव 14 नवम्बर 1911
तिरोभाव 25 सितम्बर 1989

श्री सुदर्शन सिंहजी 'चक्र'

आध्यात्मिक लेखक एवं श्री हनुमद्धाम के संस्थापक